।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

वर्ष- २१ **अप्रैल** **सन्- २००८**	**श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद्** **हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)**	**अंक- २** **रामानुजाब्द- ९९१** **त्रैमासिक प्रकाशन**

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु ते,
समं यैः संवृद्धाः स्मृति-विषयतां तेऽपि गमिता ।
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना
गतास्तुल्यावस्थां सिकतिल-नदीतीरतरुभिः ।।

जिन माता-पिता से हमारा जन्म हुआ, वे कबके काल के गाल में समा चुके हैं। जिन सगे-सम्बन्धियों, मित्रों तथा परिचितों के साथ हम बड़े हुए, वे भी परलोकगत होकर बस स्मृतियों के झरोखे में ही रह गये हैं। हम भी तो अब वृद्ध होकर नदी तट पर खड़े वृक्ष के समान प्रतिदिन गिरने की राह देख रहे हैं।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

****

क्रम सं०	विषय	पृ०सं०
१.	मथुरा	३
२.	अवतार का रहस्य	५
३.	जन्म-कर्म की दिव्यता	७
४.	श्यामसुन्दर कन्हैया ने दर्शन कराया ब्रह्माण्ड का	८
५.	राधिका के साथ भगवान श्रीकृष्ण का विवाह	११
६.	वृन्दावन एवं यमुना	१४
७.	गिरिराज गोवर्धनपर्वत	१६
८.	महारासलीला का रहस्य	१८
९.	व्रजभूमि रज की महिमा	२०
१०.	व्रज की गोपियों से उद्धव को मिली प्रेम की शिक्षा	२३
११.	यज्ञो वै विष्णुः	२४
१२.	श्रीवैष्ण धर्म की परम्परा	२४
१३.	कलियुग में श्रीवैष्णवधर्म की परम्परा	२५
१४.	श्रीरङ्गदेशिक स्वामी तथा गोवर्द्धनपीठ	२६
१५.	वृन्दावन यज्ञ का आँखों देखा हाल	२८

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) २५ रुपये तथा आजीवन सदस्यता ४०१ रुपये मात्र हैं।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

—**सम्पादक**

हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)

दूरभाष : ०६११४-२७१३०९

वैदिक-वाणी

मथुरा

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणुरमर्दनम् ।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगदगुरुम् ।।
मथुरा भगवान यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ।

भारतवर्ष भूमण्डल में सबसे श्रेष्ठ और पवित्र देश है। यहाँ देवता भी जन्म ग्रहण करने के लिए लालायित रहते हैं। भारतवर्ष में सप्तपुरियाँ पवित्र और श्रेष्ठ मानी गयी हैं।

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका ।।
(नारदपुराण–२७-३५ गरुड़पुराण उत्तर–२८-३)

इनमें भी स्वयं भगवान की प्राकट्य लीला स्थली होने के कारण अयोध्या और मथुरा की विशेषता विशेष है। पद्मपुराण में मथुरा की महत्ता बतायी गयी है। यद्यपि काशी आदि अनेक मोक्षदायिनी पुरियाँ हैं, तथापि उन सब में मथुरापुरी ही धन्य है; क्योंकि यह अपने क्षेत्र में जन्म, उपनयन, मृत्यु और दाहसंस्कार–इन चारों कारणों से मनुष्य को मुक्ति प्रदान कर देती है।

काश्यादयो यद्यपि सन्ति पुर्यस्तासां तु मध्ये मधुरेव धन्या। यज्जन्ममौञ्जीव्रतमृत्युदाहैर्नणां चतुर्द्धा विदधाति मुक्तिम्।। (पद्मपुराण, पातालखण्ड–७३-४४)

पद्मपुराण में ही भगवान का यह भी वचन है कि ध्रुव बालक होने पर भी मेरा (भगवान) उस परम विशुद्ध धाम को प्राप्त कर लिया जो ब्रह्मा आदि को भी नहीं मिला। वह मेरी मथुरापुरी देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, जहाँ जाकर लंगड़ा और अन्धा भी प्राण त्यागकर मुक्त हो जाता है। वह परम पावनी मथुरा नगरी में कंस का कारागार का स्थान परम धन्य है, जहाँ सर्वलोकेश्वर, सर्वात्मा, महायोगेश्वर भगवान स्वयं प्रकट हुए हैं।

मथुरा की प्राचीनता

एक मधु नामक दैत्य था, वह भगवान शंकर से तपस्या करके वरदान माँगा। शंकर जी ने वरदान में उसे एक शूल दिया और कहा कि जब तक तुम ब्राह्मणों और देवताओं से वैर नहीं करोगे तब तक यह शूल तुम्हारे पास रहेगा। जो पुरुष तुम्हारे सामने युद्ध के लिए आयेगा उसे यह भस्म करके तुम्हारे हाथ में लौट आवेगा। तब मधु ने पुनः कहा कि यह शूल मेरे वंशजों के पास भी रहे। शिवजी ने कहा ऐसा हीं होगा, हाँ! तुम्हारे एक पुत्र के पास यह शूल रहेगा। यह शूल जब तक तुम्हारे पुत्र के हाथ में रहेगा तब तक वह समस्त प्राणियों से अबध्य होगा। तदनन्तर उसने एक सुन्दर भवन तैयार कराकर रहने लगा। कुछ काल के उपरान्त उसे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम लवण रखा। लवण की उदण्डता से मधु देश को छोड़कर समुद्र में रहने लगा। वह चलते समय लवण को शूल देकर वरदान की बात बतला दिया। लवण अभिमानवश ऋषि-मुनियों को परेशान करने लगा। मुनिगण अयोध्या में भगवान श्रीराम के पास गये। उन्होंने लवणासुर का उपद्रव सुनाया। भरतजी ने श्रीराम से कहा भइया! मैं लवण को मार डालूँगा। भरतजी के वचन सुनकर शत्रुघ्नजी ने अपने सिंहासन से उठकर श्रीराम से कहा मझला भाई भरतजी बहुत काम किये हैं, इसलिए मैं ही

लवणासुर वध का भार लेता हूँ। श्रीराम ने शत्रुघ्न से कहा मैंने तुम्हारी बात मान ली। मैं तुम्हें ही मधुवन के लिए अभिषेक कर देता हूँ। तुम लवण का वध कर जमुना तट पर सुन्दर नगर वसाकर जनपद की स्थापना करो।

तदनन्त शत्रुघ्नजी ने मधु पुरी में आकर लवणासुर का वध किया। उस देवद्रोही लवणासुर के वध से प्रसन्न होकर इन्द्र, अग्नि आदि देवता शत्रुघ्नजी के पास आकर बोले कि हमलोग आपके कार्य से बहुत प्रसन्न हैं, आप कुछ वरदान माँगे। शत्रुघ्नजी ने देवताओं से वरदान माँगा कि यह मधुपुरी शीघ्र ही राजधानी के रूप में बन जाय। देवताओं ने कहा कि यह वरदान की बात हमें स्वीकार है। यह पुरी नि:सन्देह शूरवीरों की सेना से सम्पन्न हो जायेगी। शत्रुघ्नजी ने देवताओं से आदेश लेकर श्रावणमास से आरम्भ कर बारह वर्षों में उसे पूर्ण जनपद के रूप में बना दिया। वहाँ किसी आसुरी सम्पदा वालों से भय नहीं रह गया। यह मधुरापुरी यमुना के तटपर अर्ध चन्द्राकार के रूप में बसायी गई थी। वह पुरी गृहों, चौराहों, बाजारों और गलियों से सुशोभित होने लगी। वहाँ चारों वर्णों के लोग निवास करते थे। मधुरापुरी ही मथुरा नाम से प्रसिद्ध हुई है। इस तरह शत्रुघ्नजी ने मधुरापुरी को वसाकर रघुवंशियों के वृद्धि का काम करने लगे।

श्रीमद्भागवत के अनुसार प्राचीनकाल में यदुवंशी राजा थे। वे मथुरापुरी में रहकर माथुरमण्डल और शूरसेन मण्डल का राज्य शासन करते थे। उसी समय से मथुरा ही समस्त यदुवंशी नरपतियों की राजधानी हो गयी थी। भगवान श्रीहरि सर्वदा वहाँ विराजमान रहते हैं। जो समस्त पापों को मथकर हटा देती है और भगवत्प्रेम को बढ़ाकर उनकी प्राप्ति के योग्य बना देती है वह पुरी मथुरा नाम से प्रसिद्ध है।

मथ्नाति सर्वपापानिराति मे प्रेमवारिधिम्।
चकासति चक्रविस्तारे मत्प्राप्तिर्भावेदिका।
मथुरेति पुरी रम्या पुण्यारण्य विभूषिता।।

भारतीय धर्म, कला एवं साहित्य के निर्माण तथा विकास में मथुरा का महत्त्वपूर्ण योगदान सदा से रहा है। योगीश्वर आनन्दकन्द भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली होने के कारण यह वैष्णवों का महान तीर्थ स्थल है। मनुस्मृति, वृहत्संहिता, महाभारत, ब्रह्मपुराण, वाराहपुराण, अग्निपुराण, हरिवंश-पुराण, वाल्मीकि रामायण आदि अनेक प्रमुख ग्रन्थों में इसका मधुरा, मधुपुरी, महुरा, मधुपुर नाम से उल्लेख मिलता है। इसलिए एक कवि ने कहा है—**मथुरा तीनलोक से न्यारी यामे जन्मे कृष्णमुरारी।**

*****

विषय-भोग कब तक ?

जिस प्रकार छोटा बच्चा घर में अकेले ही बैठे-बैठे खिलाने लेकर मनमाने खेल खेलता रहता है, उसके मन में कोई भय या चिन्ता नहीं होती। परन्तु ज्योहीं उसकी माँ वहाँ आ जाती हैं, त्योंही वह सारे खिलौने छोड़कर-माँ-माँ-, कहते हुए उसकी ओर दौड़ जाता है। तुम लोग भी इस समय धन-मान-यश के खिलौने लेकर संसार में निश्चिन्त होकर सुख से खेल रहे हो, कोई भय या चिन्ता नहीं है। परन्तु यदि तुम एक बार भी उस परतत्त्व का दर्शन कर लोगे, तब फिर तुम्हें धन-मान-यश नहीं अच्छा लगेगा और सब कुछ त्यागकर उन्हीं की ओर दौड़ जाओगे।

अवतार का रहस्य

अपने अवतार लेने का प्रयोजन गीता में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने स्वयं कहा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।

परन्तु इस पर विचार करना है कि जब भगवान श्रीकृष्ण ही अपने सङ्कल्प मात्र से समस्त विश्व का सृजन, पालन और संहार करते हैं तथा वे सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं तब उन्हें कंस आदि के संहाररूपी तुच्छ कार्य के लिए अवतार लेना उचित है? यह तो मच्छर को मारने के लिए तोप का प्रयोग करने के समान प्रतीत होता है। अत: इसका समाधान महारानी कुन्ती के शब्दों से मिलता है—

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ।।

अर्थात् अमलात्मा परमहंस मुनियों को भक्तियोग का विधान करने के लिए आपका अवतार होता है, हम स्त्रियाँ इस रहस्य को कैसे समझ सकती हैं? कुन्ती के इस वचन से भगवान के अवतार का प्रयोजन परमहंसों को भक्तियोग का विधान करने के लिए होता है, यह सिद्ध होता है। जब तक जीवात्मा को भजनीय के स्वरूप का अवलम्बन नहीं होता तब तक भजन करने वालों के मन का आश्रय नहीं हो सकता है। मुनि के मन का आकर्षण भगवान के सिवा प्राकृत पदार्थों में नही हो सकता। अत एव आवश्यकता होती है कि परमाराध्य भगवान ही अचिन्त्य, अनन्त, सौन्दर्य-माधुर्यमयी, मङ्गलमूर्ति रूप में अवतीर्ण होकर अपना स्वरूप समर्पण करके भक्तियोग का सम्पादन करें।

यह कार्य पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के अवतार लिए बिना सम्पन्न नहीं हो सकता। पर स्वरूप भगवान के ध्यान से उतना आनन्द नहीं मिलता, जितना आनन्द अचिन्त्य लीलाशक्ति सम्पन्न परम मनोहर श्रीकृष्ण मूर्तिरूप में भगवान को प्रकट होने से दर्शन रूप में मिलता है। जैसे सूर्य को दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा देखने पर उसमें जो विचित्रता प्रतीत होती है, वह केवल नेत्रों से देखने पर प्रतीत नहीं होती।

उक्त भाव श्रीरामावतार के चरित्र से भी प्रकट होता है। राजा जनक परब्रह्म रूप सूर्य को अपने नेत्रों से देखते थे; किन्तु जब भगवान श्रीराम अपनी विशेष शक्ति सम्पन्न होकर अवतरित हुए और जनकपुर में गये तब राजा जनक ने उन्हें देखते ही कहा—

इन्हहिं विलोकत अति अनुरागा ।
शरवस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा ।।
सहज विराग रूप मन मोरा ।
चकित होत जिमि चंद चकोरा ।।

दिव्य स्वरूप सम्पन्न भगवान श्रीराम के दर्शन दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा देखे गये सूर्य के समान प्रतीत हुआ। अत एव उन्होंने कहा कि 'सहज विराग रूप मन मोरा। चकित होत जिमि चंद चकोरा' ।। सभी पाषाण पार्थिव हैं; परन्तु पाषाण होते हुए भी हीरा अधिक मूल्यवान होता है। कपास की अपेक्षा उससे बने हुए वस्त्र अधिक मूल्य का होता है। उसी प्रकार भगवान की दिव्य मङ्गलमयी मूर्ति अधिक माधुर्य सम्पन्न होती है।

गोपियों को भगवद्दर्शन के विना 'त्रुटियुगायते' एक-एक पल युग के समान प्रतीत हो रहा था।

उन्हें सन्तुष्ट करने में श्यामलमूर्ति भगवान कृष्ण ही समर्थ हुए। अत एव भाष्यकार श्रीरामानुजाचार्य ने 'परित्राणाय साधूनाम्०' के भाव प्रदर्शित करते हुए **वैष्णवाग्रेसरा मत्समाश्रयणे प्रवृत्ता मन्नामकर्मस्वरूपाणाम् आवाङ्मनसगोचरतया मद्दर्शनाद् ऋते स्वात्मधारणपोषणादि सुखम् अलभमाना अणुमात्रकालम् अपि कल्पसहस्रं मन्वाना: प्रशिथिल-सर्वगात्रा भवेयु:'** ।

अर्थात् जो अनन्त बल, ज्ञान आदि कल्याण गुणों के निधि भगवान के समाश्रित होकर सतत् उनके नामों का सङ्कीर्तन करते रहते हैं, जिन्हें भगवान की लीलाओं के गान में आनन्दानुभूति होती है, जो भगवत्स्वरूप तथा उनके दिव्य गुणों का निरन्तर स्मरण करते रहते हैं और भगवद्दर्शन के लिए इतने उत्कण्ठित रहते हैं कि भगवद् वियोग में क्षणभर का समय उन्हें हजार कल्प के समान प्रतीत होने लगता है, वैसे वैष्णव भक्त ही यहाँ साधु शब्द से ग्रहण किए जाते हैं। भगवद् भक्त अपने जीवन धारण-पोषण में थोड़ा भी सुख अनुभव नहीं करते हैं। इकलौते पुत्र के वियोग में माँ की जैसी बेचैनी होती है और बछड़े के वियोग में गाय में जैसी व्याकुलता आ जाती है, उसी प्रकार की स्थिति भगवान के वियोग में अनन्य भक्तों की हो जाती है। भगवद् विरह के ताप से भक्तों के सारे अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। ये लक्षण जिन भक्तों में होते हैं भगवान उनको अपने स्वरूप और लीलाओं का दर्शन तथा अपने साथ बात-चीत आदि करने का सुअवसर देकर उनका परित्राण करते हैं। भक्तों के भगवद् विरहजन्य ताप को दूर करना ही परित्राण है।

कंसादि दुष्टों का नाश करना तो आनुसङ्गिक है। सम्पूर्ण विश्व का हित वैदिक धर्म में ही निहित है। वैदिक धर्म विश्व का आधार है। भगवान अपने आचरण और वचन इन दोनों से वैदिक धर्म की मर्यादा को बचाते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण की बाललीला तथा कंसादि दुष्टों की वध लीला मानव के लिए अनुकरणीय नहीं है। द्वारका में सोलह हजार एक सौ आठ रनिवासों में रहते हुए भगवान ने वैदिक धर्मों का पालन किया, वह सद् गृहस्थों के लिए सदा अनुकरणीय है। सत्कर्मों के पालन में सब प्रकार लाभ होता है। अत एव भगवान ने स्वयं कहा कि गृहस्थों को सत्कर्म की शिक्षा के लिए मैं उनका पालन करता हूँ।

ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता।
तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थित: पुत्र मा खिद:।।

(भाग०-१०/६९,४०)

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निमित्त बनाकर मानव कल्याण के लिए जो श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश दिया है वह भगवान का उपदेश सदा पालनीय है। महामुनि शुकदेव जी ने कहा—

ईश्वराणां वच: सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्।
तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत्।।

(भाग०-१०/३३/३२)

भगवान ने मानव कल्याण के लिए जो उपदेश किया है उसे सत्य मानकर उसका पालन करना चाहिए। उसी के अनुसार आचरण भी करना चाहिए। उनके द्वारा किए गए कर्म का आचरण कहीं-कहीं करें।

भगवान की सभी लीलाओं का कीर्तन भजन एवं स्मरण करना चाहिए। उससे मानव पवित्र होकर भगवत् प्राप्ति के योग्य बन जाता है; क्योंकि भगवत्लीला का कीर्तन स्मरण आदि में सब दोषों का निवारण करने की शक्ति है।

*****

जन्म-कर्म की दिव्यता

कर्म, ज्ञान, भक्ति, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य, स्नेह, सौहार्द एवं सौष्ठव की मूर्ति रस स्वरूप निखिल ब्रह्माण्ड नियन्ता भगवान की लीलाएँ अनेकानेक अवतारों के रूप में इस जगत् निवासियों को देखने को मिलती रहती है। सज्जनों की रक्षा, दुष्टों के विनाश, धर्म की स्थापना, अधर्म का उन्मूलन एवं प्रेम सौहार्द प्रदान करने के लिए भगवान कभी मत्स्य, वराह, नृसिंह बनते हैं, तो कभी राम, परशुराम एवं कृष्ण रूप में अवतार लेते हैं। भारतीय चिन्तन परम्परा के मनिषियों का मत है कि भगवान के अनेक अवतार अलग-अलग कलाओं से होते हैं, परन्तु श्रीकृष्णावतार सब कलाओं से परिपूर्ण है। अत एव श्रीमद्‌भागवत में सब अवतारों का वर्णन करते हुए 'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्' ऐसा कहा गया है।

भगवान का जन्म कर्मानुसार फल भोगने के लिए नहीं होता, वे अपने सङ्कल्प रूप ज्ञान से भक्तों के कल्याणार्थ देव, मनुष्यादि रूप धारण करते हैं। इसलिए भगवान का शरीर पञ्चभूत का बना हुआ नहीं रहता है; किन्तु दिव्य अप्राकृत होता है। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से कहा है—

जन्मकर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।।

अर्थात् मेरे जन्म-कर्म दिव्य होते हैं। इनके जन्म की दिव्यता श्रीमद्भागवत महापुराण में अवतार प्रसङ्ग में मिलती है। भगवान श्रीकृष्ण मथुरा के कारागार में चतुर्भुज रूप में अवतरित हुए थे। उनकी चारों भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म थे। दोनों आँखे कमल के समान कोमल एवं विशाल थीं। वक्षस्थल पर श्रीवत्स का सुवर्णमय चिह्न था। गले में कौस्तुभमणि झिलमिला रही थी। वर्षाकालीन मेघ के समान श्यामल शरीर पर मनोहर पीताम्बर सुशोभित हो रहा था। ये सारे वैशिष्य प्राकृत शरीरधारी किसी नवजात शिशु में सम्भव नहीं है। अत: भगवान श्रीकृष्ण अपनी इच्छा से अप्राकृत शुद्ध सत्त्वमय शरीर धारण किये हैं। उनके कर्म भी विलक्षण होते हैं—

कंस के कारागार में जन्म के समय प्रहरियों का सो जाना, वसुदेव द्वारा नवजात शिशु को नन्दबाबा के घर पहुँचाना, मार्ग में शिशु श्रीकृष्ण के अङ्गुष्ठ संस्पर्श से यमुनाजल का शान्त होना, खेलते-खेलते अपना अङ्गुठा पीना, शकटासुर, तृणावर्त और पूतना राक्षसी को दण्ड देना, माखन चोरी, गोचारण, कालियनाग का दमन, कंसमर्दन, रासलीला, गोपीप्रेम, ग्वालवालों की मैत्री, मथुरागमन, कालयवन, जरासन्ध प्रभृति का संहार यक्षपत्नियों पर कृपा, युद्ध क्षेत्र की रणभूमि में महाभारत युद्ध का सञ्चालन, सारथिक कर्म, कौरव संहार, द्वारका गमन, यदुकुल संहार तथा अन्त में भगवान के स्वधाम गमन आदि दिव्य लीलाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। आनन्दकन्द सच्चिदानन्द परब्रह्म की अचिन्त्य अलौकिक लीलाएँ मायारूपी यवनिका के कारण प्राकृत मानवों को समझ में नहीं आती है, जैसे भगवान श्रीकृष्ण ने अपना अङ्गुठा पान किया। यह अनुभव दिव्य ज्ञान सम्पन्न ऋषियों को मिला।

भगवान अपने अङ्गुष्ठ पान से पहले यह सोचते हैं कि क्या कारण है कि बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि अमृत रस को छोड़कर मेरे पादारविन्द रस का पान करते हैं? क्या वह अमृत से भी ज्यादा स्वादिष्ट है? इसी ज्ञान परीक्षा के लिए शिशु कृष्ण निजपद पान रूपी लीला किया करते थे।

विहाय पीयूषरस मुनीश्वरा ममांध्रिराजीवरसपिवन्तिकम् । इति स्वापाम्बुजपान कौतुकी सगोपबालः श्रियमान-नोक्तु वः ।।

शेष पृ० ८ पर

श्यामसुन्दर कन्हैया ने दर्शन कराया ब्रह्माण्ड का

गोकुल में श्रीयशोदाजी अपने प्यारे शिशु श्रीकृष्ण को अपनी गोद में लेकर बड़े प्रेम से स्तन में लगाकर दूध पीलाने लगीं। उस समय वह वात्सल्य स्नेह से सराबोर हो रही थीं। जब शिशु रूपधारी भगवान श्रीकृष्ण ने इच्छानुसार दूध पी लिया तब माता यशोदा जी उनके कोमल मुख को चूमने लगीं। उस समय श्रीकृष्ण को जम्भाई आ गयी। यशोदाजी उनके मुख में विश्व के समस्त पदार्थों को देखी। उसे देखकर यशोदाजी डर गयीं। उससे उनकी आँखें बन्द हो गयीं, भगवान ने अपने मुख में क्या-क्या दिखाया—आकश, अन्तरिक्ष, तारागण, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ वन एवं जगत् के समस्त चराचर प्राणियों को।

खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः
सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ।
द्वीपान् नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि
भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ।।(भाग०–१०/७/३६)

यशोदा जी की आँखे बन्द क्यों हो गयी थी? जो यशोदा जी की आँखे परिमित चीजों को ही देखने में समर्थ हो सकती थी, वे भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द में अपरिमित विश्व के सारे पदार्थों को देखने में कैसे समर्थ हो सकती? अर्जुन को भगवान ने दिव्य नेत्र देकर अपना विश्वरूप का दर्शन कराया था। यशोदा को तो प्राकृत नेत्र से ही देखना था। अत एव वह देखने में असमर्थ होकर आँखे बन्द कर ली।

प्रश्न—अर्जुन को विश्वरूप के भगवद्दर्शन की इच्छा उत्पन्न हुई थी। इसलिए भगवान ने दिव्य नेत्र देकर विश्वरूप का दर्शन कराया; परन्तु यशोदा जी को श्रीकृष्ण के मुख में विश्व के समस्त पदार्थों को देखने की इच्छा तो हुई नहीं, फिर श्रीकृष्ण ने अपने

पृ० ७ का शेष

चोरी लीला का रहस्य त्रिकालदर्शी ऋषि-मुनियों ने कहा कि व्रज से गोप-गोपियों को आनन्द प्रदान करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण अपने समान अवस्था वाले ग्वालवालों को साथ लेकर माखन, घी, दही आदि की चोरी करते थे।

जनयन गोप-गीणीनामानन्दं बाललीलया ।
वयस्यैः चोरयामास नवनीतं घृतं हरिः ।।

इस तरह भगवान श्रीकृष्ण के प्रत्येक लीलाएँ रहस्यमयी हैं। अज्ञानाच्छादित हृदय वाले उन्हें नहीं समझ पाते। मानव जब प्रतिक्षण भगवान श्रीकृष्ण की मनोहारिणी लीला, कथाओं का श्रवण, मनन एवं कीर्त्तन करने लगता है तब भगवान के चरणों में उसकी भक्ति बन जाती है और उसी से परमधाम वैकुण्ठ प्राप्त हो जाता है। काल की शक्ति को भी क्षीण कर देने की शक्ति भगवान की भक्ति में है। अत एव भगवद् धाम प्राप्ति के लिए अनेक सम्राटों ने अपना राजपाट छोड़कर भगवान की लीला, कथाओं का श्रवण, कीर्त्तन एवं चिन्तन में अपने आप को समर्पित कर दिया है। अत एव मनुष्य को भगवान की लीला कथा का श्रद्धापूर्वक श्रवण करना चाहिए।

मर्त्यस्तयानुसवमेधितयामुकुन्द
श्रीमत्कथाश्रवणकीर्त्तन चिन्तयैति ।
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं
ग्रामाद् वनं क्षितिभुजोऽपि च ययुर्यदर्थाः ।।

(भाग०–१०/९०/५०)

*****

मुख में जगत् के पदार्थों का दर्शन क्यों कराया?

उत्तर—भगवान को अपने मुख में यशोदा के समक्ष विश्व के सम्पूर्ण पदार्थों को दिखाने में दो कारण है—(१) देवकी-वसुदेव ने पूर्व में तपस्या करके भगवान विष्णु से वरदान माँगा था कि आपके समान पुत्र चाहिए। भगवान के समान सर्वगुण सम्पन्न विश्व में दूसरा था नहीं, अत: वे स्वयं उनके पुत्र के रूप में अवतरित हो गये। अवतार काल में भगवान चतुर्भुज नारायण के रूप में प्रकट हुए थे। जब दवेकी जी ने बाल रूप में होने की उनसे प्रार्थना की तब भगवान ने कहा कि अगर मैं मानवीय बालक रूप में आता तो आप (देवकी और वसुदेव) को विश्वास नहीं होता कि मेरा पुत्र नारायण स्वरूप है। उसे ही विश्वास दिलाने के लिए मैं इस रूप में आया हूँ।

एतद् वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ।।

नन्द जी पूर्व जन्म में द्रोण नाम के वसु थे, उनकी पत्नी का नाम धरा था। उनको सन्तान नहीं थी। वे भगवान विष्णु के भक्त थे। उन दोनों ने पुत्र की कामना से तपस्या के द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान माँगने के लिए कहा। द्रोण ने कहा पूर्णतम जनार्दन भगवान श्रीकृष्ण मेरे पुत्र हों और हम दोनों की उनमें अनन्य प्रेममयी भक्ति सदा बनी रहे। हम दोनों को दूसरा वरदान नहीं चाहिए। ब्रह्मा ने कहा इस जन्म में तुम्हें पुत्र नहीं होगा; परन्तु दूसरे जन्म में तुम लोगों की अभिलाषा पूर्ण होगी। वे ही द्रोण द्वितीय जन्म में पृथ्वी पर नन्द हुए और उनकी पत्नी धरा यशोदा नाम से प्रसिद्ध हुई। इस जन्म में भी दोनों पति-पत्नी हुए। भगवान श्रीकृष्ण अपनी बाललीला द्वारा नन्द और यशोदा के प्रेम को बढ़ाने के लिए मथुरा में जन्म के बाद गोकुल में नन्द-यशोदा के पास चले गये। यशोदा जी को यह ज्ञान कराने के लिए कि मैं जगदीश्वर हूँ भगवान ने अपने मुख में विश्वरूप का दर्शन कराया।

दूसरा कारण है कि भगवान श्रीकृष्ण माँ यशोदा के स्तन पकड़कर दूध पान कर रहे थे, उस समय उसे (यशोदा को) यहाँ शङ्का हो गयी कि अधिक दूध पीने से मेरे लाला को कष्ट हो जायेगा। इसलिए उन्होंने अपने स्तन से कन्हैया को अलग कर दी थी। भगवान अपने मुख में विश्व का दर्शन कराकर माँ को बोध कराया कि मैं अकेला दूध नहीं पी रहा हूँ, यह दूध विश्व के अन्य लोगों को भी मिल रहा है।

दूसरी बार मिट्टी खाने के बहाने भगवान लीलाविहारी श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द में यशोदा जी को ब्रह्मण्ड का दर्शन कराया है। भगवान एक दिन बाललीला काल में यमुनाजी के तट पर खेल रहे थे, उसी समय वे यमुना जी की पवित्र मिट्टी का आस्वादन करने लगे। ग्वालबाल श्रीबलदेव जी को साथ लेकर श्रीमती यशोदा जी के पास चले गए और उनसे कहा माताजी! तुम्हारा लाला कन्हैया मिट्टी खाता है। नन्दरानी यशोदाजी दौड़कर श्रीकृष्ण के पास गयीं और उनका हाथ पकड़ लिया। भगवान श्रीकृष्ण डर गये। प्रभु के नेत्र चञ्चल हो गये। यशोदा जी ने उनसे पूछा तुमने क्यों मिट्टी खायी? तेरे साथी ग्वालबाल और बलदेव बता रहे हैं। उन लोगों ने कहा है कि हमलोगों के मना करने पर भी तुमने मिट्टी खाना बन्द नहीं किया है। श्रीकृष्ण को मिट्टी बहुत प्रिय लगती है।

भगवान ने कहा मैया! व्रज के सारे बालक झूठ बोल रहे हैं। मैंने कभी भी मिट्टी नहीं खायी। यदि तुम उनलोगों की बात सत्य मानती हो तो मेरा मुख तुम्हाने सामने ही है तुम अपनी आँखों देख लो।

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।
यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ।।

(भाग०-१०/८/३५)

शेष पृ० १० पर

राधिका के साथ भगवान श्रीकृष्ण का विवाह

मानव कल्याण के लिए देवताओं एवं ऋषियों की प्रार्थना पर क्षीरसागरशायी भगवान विष्णु ने मथुरा के कारागार में देवकी देवी के गर्भ से प्रकट हुए। उन्होंने साक्षात् नारायण के रूप में वसुदेव और देवकी को दर्शन दिया। भगवान के दिव्यातिदिव्य अलौकिक स्वरूप का दर्शन कर देवकी ने उनसे बालक रूप धारण करने की प्रार्थना की। वे भगवान बाल रूप धारणकर श्रीवसुदेव जी के माध्यम से यमुना को पारकर गोकुल में नन्द के घर चले गये। नन्दजी ने उन्हें अपना पुत्र समझकर जन्मोत्सव मनाया। नामकरण संस्कार के बाद भगवान की अद्भुत लीला प्रारम्भ हुई, जो मानव को आश्चर्यचकित कर देने वाली है। श्रद्धा और विश्वास के साथ भगवान के दिव्य चरित्र का कीर्तन तथा श्रवण करने से उनकी लीला का रहस्य समझ में आता है। आसुरी सम्पदा वालों को भगवान के दिव्य आश्चर्यपूर्ण लीला पर विश्वास नहीं होता; परन्तु दैवी सम्पदा सम्पन्न सात्त्विक पुरुष भगवान की दिव्य लीला पर पूर्ण विश्वस्त रहते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण का चरित्रप्रधान ग्रन्थ श्रीमद्-भागवत में राधिका विवाह का प्रसङ्ग उल्लिखित नहीं है। अत एव उनके सम्बन्ध में लोगों में विभिन्न प्रकार के भ्रम उत्पन्न हो जाता है, तद् निवारणार्थ तथा भक्तों को आनन्द प्रदान करने के लिए श्रीकृष्ण के साथ राधाविवाह का प्रसङ्ग प्रस्तुत किया जा रहा है—

एक दिन श्रीनन्दजी अपने नन्हें शिशु श्रीकृष्ण को अपने गोद में लेकर गौओं को चराते हुए नन्दगाँव से विशेष दूर भाण्डीरवन में पहुँच गये, जो अभी वृन्दावन से उत्तर पाँच किलोमीटर दूरी पर स्थित है। भगवान श्रीकृष्ण की इच्छा से वायु का वेग अत्यन्त प्रखर हो गया। मेघ ने आकश को आच्छादित कर दिया, कदम्ब आदि वृक्षों के पल्लव

पृ० ९ का शेष

यशोदाजी ने कहा यदि ऐसी बात है तो तुम अपना मुख खोलकर दिखा दो। माता के कहने पर भगवान ने अपना मुख खोलकर दिखा दिया। उनका ऐश्वर्य अनन्त है, वे केवल लीला के लिए ही मनुष्य बने हुए हैं। यशोदाजी ने पूर्व की तरह उनके मुख में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (पहाड़, द्वीप, समुद्रों सहित सारी पृथ्वी आदि पदार्थो) को श्रीकृष्ण के मुख में देखा। वह विचार करने लगी कि यह कोई स्वप्न तो नहीं है या भगवान की माया है अथवा मेरी बुद्धि में भ्रम तो नहीं हो रहा है अथवा मेरे इस बालक में ही कोई जन्मजात योगसिद्धि है। इस रहस्य को समझने के लिए यशोदाजी अन्तर्यामी भगवान की शरणागति करती हैं। जब यशोदा जी श्रीकृष्ण के तत्त्व को समझ गयीं तब सर्वशक्तिमान प्रभु ने अपनी पुत्र स्नेहमयी वैष्णवी योगमाया का यशोदा के हृदय में सञ्चार कर दिया। उससे यशोदाजी उस घटना को भूल गयीं और उसने अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण को गोद में उठा लिया।

व्रज की भूमि सामान्य भूमि नहीं है। यह दिव्यलोक से आयी है। इसकी रज परम पवित्र है। उसमें भी यमुना तट की रज। जिसकी चाह समस्त प्राणियों की रहती है। भगवान के पेट में समस्त जगत् के प्राणी हैं। व्रज की रज समस्त प्राणियों को प्राप्त कराने की दृष्टि से भगवान ने मिट्टी खायी है। जैसे भगवान के चरणोदक सामान्यजल नहीं होता वैसे ही व्रजभूमि यमुना तट की रज सामान्य मिट्टी नहीं है। इसी दृष्टि से भगवान ने कहा कि मैं मिट्टी नहीं खाया हूँ। सामान्य मिट्टी पेट में जाने पर हानिकर होती है; परन्तु व्रज में यमुना तट की रज निर्मल बनाने वाली है।

*****

टूट-टूटकर गिरने लगे। महान अन्धकार छा गया। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण भयाक्रान्त होकर रोने लगे। नन्दजी को भी भय हो गया। वे अपने शिशु को गोद में लिए परमात्मा का स्मरण करने लगे। उस समय करोड़ों सूर्य के समान दिव्य तेज प्रकट हुआ। नन्दजी ने उन तेज के भीतर नौ नन्दों के राजा वृषभानु नन्दिनी श्रीराधा को देखा। वे अलौकिक सौन्दर्य तथा शक्ति सम्पन्न थी। उनके शरीर पर दिव्यवस्त्र तथा आभूषण शोभा पा रहे थे। श्रीराधाजी के दिव्य तेज से अभिभूत होकर नन्दजी ने उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने हाथ जोड़कर श्रीराधा से कहा ये शिशु स्वरूप कृष्ण साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। तुम इनकी वैकुण्ठवासिनी नीलादेवी स्वरूप राधा प्राणवल्लभा हो। **'वैकुण्ठनाथोऽसि यदा त्वमेव लक्ष्मीस्तदेयं वृषभानुजा हि'** (गर्ग सं०गो०–१६/२२)। यह गुप्त रहस्य मुझे गर्गाचार्य जी ने कहा है, हे राधे! अपने प्राणनाथ को मेरी गोद से ले लो। ये बादलों के गर्जना से डर गये हैं।

सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, यम आदि जिनसे भय खाते हैं, **'भयादस्याग्नि तपति भयात् तपति सूर्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः'**। वे ही श्रीकृष्ण आज प्रचण्ड वायुवेग तथा मेघगर्जन आदि से डर रहे हैं। राधे! तुम मेरी रक्षा करो। तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है। मेरे ऊपर कृपा करके तुमने मुझे दर्शन दिया है। तुम दोनों प्रिय और प्रियतम के चरणारविन्दों में मेरी दृढ़ भक्ति हो। तुम्हारी भक्ति से मुझे साधु-सन्तों का सङ्ग सदा मिलता रहे तथा प्रत्येक युग में सन्तों के चरणों में मेरा प्रेम बना रहे।

यदि प्रसन्नोऽसि तदा भवेन्मे
भक्तिर्दृढा कौ युवयोः पदाब्जे।
सतां च भक्तिस्तव भक्तिभाजां
संगः सदा मेऽथ युगे युगे च।।
(गर्ग सं० गोलोक खण्ड–१६/१०)

श्रीराधिकाजी ने नन्दजी को वैसा ही वरदान देकर श्रीकृष्ण को दोनों हाथों से अपनी गोद में ले लिया। नन्दजी अपने गाँव में लौट गये।

भाण्डीरवन में भगवत्सङ्कल्प से एक दिव्य रत्नमय मण्डप एवं सभाभवन आदि भी तैयार हो गये। वसन्त ऋतु की सारी गरिमा वहाँ प्रकट हो गयीं। वहाँ एक सुन्दर सरोवर प्रकट हुआ, उसमें सुवर्णमय सुन्दरकमल का दर्शन होने लगा। दिव्यधाम की अलौकिक झाँकी तैयार हो गयी। घनश्याम भगवान श्रीकृष्ण किशोरावस्था के अनुरूप दिव्य शरीर धारण करके श्रीराधा के सम्मुख खड़े हो गये। उनके अङ्गों पर पीताम्बर, गले में कौस्तुभमणि और हाथ में वंशी शोभा पाने लगी। विवाह मण्डप में विवाह की सारी सामग्रियाँ सुसज्जित हो गयीं मेखला, कुश, सप्तमृतिका, जलपूर्ण कलश मण्डप में दृष्टिगोचर होने लगे। विवाह मण्डप में एक श्रेष्ठ सुवर्णमय सिंहासन भी प्रकट हुआ। उस पर किशोरावस्था सम्पन्न श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और उनकी नित्यप्रिया श्रीराधा जी विराजित हो गये। उस समय चतुर्मुख ब्रह्मा स्वयं सत्यलोक से भगवान श्रीकृष्ण के सम्मुख उपस्थित हुए। तदनन्तर उन्होंने श्रीराधा और श्रीकृष्ण की स्तुति की। उन्होंने कहा आप दोनों नित्य दम्पत्ति हैं और परस्पर दोनों में स्वाभाविक प्रीति है। आप परात्परब्रह्म होते हुए एक दूसरे के अनुरूप रूप धारण करके लीला विलास करते हैं। फिर भी लोक व्यवहार की दृष्टि से लोक से ग्रहादि की कुदृष्टि निवारण के लिए आप दोनों की वैवाहिक विधि मैं सम्पन्न कराऊँगा।

इतना कहकर ब्रह्माजी ने अग्निकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित किया और उसी अग्नि के समक्ष प्रिया श्रीराधाजी तथा प्रियतम श्रीकृष्ण का वैवाहिक विधि से पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न कराया। ब्रह्माजी ने श्रीहरि और राधिका जी से अग्निदेव की सात परिक्रमाएँ करवायी। फिर दोनों से सात मन्त्र पढ़वाये। तदनन्तर श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर श्रीराधिका

का हाथ रखवाकर और श्रीकृष्ण का हाथ श्रीराधिका के पृष्ठ भाग पर रखवाकर उन दोनों से मन्त्रों का उच्चारण करवाया, पश्चात् श्रीकृष्ण ने श्रीराधिका के गले में माला पहनायी और श्रीराधिका ने श्रीकृष्ण के कण्ठ में माला डाल दी। फिर ब्रह्माजी के आदेशानुसार उन दोनों ने अग्नि की परिक्रमा की। तत्पश्चात् दोनों दम्पति एक सिंहासन पर बैठ गये। पुन: ब्रह्माजी ने उन दोनों से पाँच मन्त्रों का उच्चारण करवाया। ब्रह्माजी आचार्य और यजमान दोनों के काम कर रहे थे। उन्होंने ही श्रीराधाजी को श्रीकृष्ण के हाथ में सौंपकर यजमान का और मन्त्र बोलवाकर आचार्य का पाठ पूरा किया। उस समय देवताओं ने फूलों की वर्षा की। विद्याधरियों के साथ देवताओं ने नृत्य किया। गन्धर्वों, चारणों एवं किन्नरों ने मधुर स्वर में श्रीकृष्ण के लिए मङ्गल गान किया। मृदङ्ग, वीणा, वेणु, शङ्ख आदि बाजे बजने लगे। आकाश में खड़े होकर देवताओं ने मङ्गलप्रद शब्दों का उच्चारण करते हुए जय-जयकार करने लगे। तदनन्तर श्यामसुन्दर भगवान श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी से कहा कि आपने राधा के साथ मेरा वैवाहिक विधि सम्पन्न करायी है। एतदर्थ आप इच्छा के अनुसार दक्षिणा माँग लीजिए। ब्रह्मा ने कहा प्रभो! आप अपने युगल चरणों में मुझे अपनी भक्ति ही दक्षिणा के रूप में प्रदान करे।

उवाच तत्रैव विधि हरिः स्वयं
यथोप्सितं त्वं वदविप्रदक्षिणाम्।
तदा हरिं प्राह विधि प्रभो मे देहि
त्वदंघ्रयोर्निजभक्तिदक्षिणाम्।।

(गर्ग सं०गोलो०-१६/३७)

करुणानिधि श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को भक्ति का वरदान देकर दक्षिणा की विधि पूर्ण की। ब्रह्माजी ने श्रीराधिका के मङ्गलमय दोनों चरणारविन्दों को हाथों से स्पर्श कर उनपर अपने मस्तक को रखकर बार-बार प्रणाम करके अपने लोक में चले गये। तदनन्तर दिव्य युगलमूर्ति श्रीराधाकृष्ण वृन्दावन, यमुना तथा वन की निकुञ्जों में आनन्दपूर्वक विभिन्न प्रकार की रहस्यमयी लीला करने लगे। भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीराधिका जी को शृङ्गार किया। जब राधाजी भगवान श्रीहरि की शृङ्गार करने के लिए उद्यत हुई तब श्रीकृष्ण अपने किशोरावस्था को त्यागकर शिशु रूप हो गये। नन्द जी जिस शिशु रूप में श्रीकृष्ण को राधिका के लिए समर्पण किया था भगवान उसी रूप में होकर धरती पर लोटते हुए भय से रोने लगे। भगवान को उस रूप में देखकर राधिकाजी भी विलाप करती हुई कहने लगीं हे हरे! आप मुझपर माया क्यों फैला रहे हैं, तब उस राधा के समक्ष आकाशवाणी हुई। आकाशवाणी में कहा राधे! तुम चिन्ता मत करो। कुछ काल के बाद तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।

श्रीराधाजी शिशुरूपधारी श्रीकृष्ण को लेकर नन्दगाँव में आयी और यशोदा से बोली कि आपके पति नन्दजी ने इस बालक को मुझे दिया था, इन्हें लीजिये। यशोदा जी ने उसके लिए राधा को धन्यवाद दिया। तदनन्तर राधाजी अपने पिता वृषभानु के घर चली गयीं। राधा के साथ श्रीकृष्ण के विवाह की परममङ्गलमयी गुप्त कथा गर्गाचार्य ने कही है।

इस आप्त वचन पर पूर्ण विश्वस्त होकर श्रद्धा के साथ श्रीराधाकृष्ण विवाह प्रसङ्ग को पढ़ना एवं समझना चाहिए। इससे मानव जन्मान्तरीय पाप से मुक्त होकर निर्मल बन जाता है।

इत्थं हरेर्गुप्त कथा च वर्णिता
राधा विवाहस्य सुमङ्गलावृता।

*****

वृन्दावन एवं यमुना

प्राचीन काल में बह्रिषद् से ईशानकोण, वदुपुर से दक्षिण और शोषसुर से पश्चिम की भूमि को माथुरमण्डल कहते थे। उसी माथुरमण्डल के अन्दर साढ़े बीस योजन विस्तृत भू-भाग को दिव्य माथुर-मण्डल में बहुत से वन हैं उनमें सबसे श्रेष्ठ वृन्दावन नामक वन है, जो पूर्णतम भगवान श्रीकृष्ण की लीलास्थली रही है। वैकुण्ठ से बढ़कर दूसरा कोई लोक न हुआ है और न होगा; परन्तु वृन्दावन वैकुण्ठ से भी परम उत्कृष्ट है, जहाँ गिरिराज गोवर्धनपर्वत, सूर्यतनया कालिन्दी, वृहत्सानु (वरसाना) पर्वत और नन्दीश्वर गिरि शोभा पा रहे हैं। चौबीस कोस विस्तृत यह वन है। पशु-पक्षियों के लिए हितकर, गोप-गोपी और गौओं के लिए सेवन करने योग्य तथा लताकुञ्जों से आवृत यह वन है। इसका ही नाम वृन्दावन है।

वैकुण्ठान्नापरो लोको न भूतो न भविष्यति।
एकं वृन्दावनं नाम वैकुण्ठाच्च परात्परम्।।
यत्र गोवर्द्धनो नाम गिरिराजो विराजते।
कालिन्दीनिकटे यत्र पुलिनं मङ्गलायनम्।।
वृहत्सानुर्गिरिर्यत्र यत्र नन्दीश्वरो गिरिः।
क्रोशानां च चतुर्विंशद्विस्तृतैः काननैर्वृतम्।।
पशव्यं गोपगोपीनां गयां सेव्यं मनोहरम्।
लताकुञ्जावृतं तद्वै वनं वृन्दावनं स्मृतम्।।

(गर्ग सं० वृन्दावन ख० अ०१)१५-१८

गर्ग सं० के वृन्दावन खण्ड के द्वितीय अध्याय में यह कहा गया है। भगवान ने अपनी दिव्यलीला क्षेत्र के रूप में गोवर्द्धन पर्वत कालिन्दी नदी सहित चौरासी कोस विस्तृत दिव्य भूमि को भूतल पर भेजा, जिसमें चौबीस वन हैं। जो वृन्दावन नाम से प्रसिद्ध हैं। व्रज की महिमा समझकर भक्तगण चौरासी कोस की परिक्रमा करते हैं। गोवर्धन की परिक्रमा सात कोस की है। वृन्दावन के सभी मन्दिरों की परिक्रमा पाँच कोस की होती है। आज भी प्रतिदिन हजारों लोग परिक्रमा करते हुए नजर आते हैं।

श्रीयमुना जी की परम पावनी अनादि सञ्चित कलुष नशावनी परम पावन धारा वृन्दावन में रहकर सर्वेश्वरी राधिका एवं सर्वेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के चरणों को प्रक्षालित करती हुई प्रवाहित होती है। श्रीयमुना जी उन दोनों के दिव्य क्रीड़ा स्थल बनी रही हैं। श्रीराधेश्याम के दिव्य रासलीला यमुना में ही हुई। आज भी भगवान के दिव्य लीलाओं के चिह्न परिलक्षित हो रहे हैं। जैसे वंशीवट, कदम्बवृक्ष जिस पर भगवान चीरहरण कर बैठे थे। कालियनाग का दमन कर भगवान ने व्रज के बछड़े एवं ग्वालवालों को बचाया था उस स्थल का भी दर्शन होता है। भगवान ने जहाँ गोपियों के साथ दिव्य रास किया था वह निधि बन के नाम से प्रसिद्ध है, यह आप्त वचन से सिद्ध है कि वर्तमान में भी भगवान प्रतिदिन रात्री में रासलीला निधिवन में करते हैं। वहाँ रात्रि में एक भी जीव-जन्तु नहीं रहता है।

वर्तमान में यमुना के तटपर स्नानार्थी एवं दर्शनार्थीयों के सौविध्य के लिए २४ घाट बने थे, यद्यपि वर्तमान में यमुनाजी की धारा उन घाटों से दूर हट गई है तथापि उन घाटों पर बने क्षत्रि का स्वरूप उसका स्मरण कराता है। वर्तमान वृन्दावन के पश्चिम उत्तर और पूर्व यमुना जी की श्याम सलीला धारा बहती है। इस भूतल पर यमुना जी के आने का इतिहास में वैविध्य देखा जाता है। गर्गसंहिता के अनुसार गोलोक से निकलकर यमुना नदी कालिन्द गिरि पर उत्तरी हैं वहाँ से उतरकर भूतल पर आयीं। कलिन्द पर्वत से निकलने के

शेष पृ० १४ पर

गिरिराज गोवर्धनपर्वत

भगवान श्रीकृष्ण वात्सल्य, सौशील्य तथा सौलभ्य गुण के कारण भक्तों के आर्त्त पुकार पर अपने नित्यधाम वैकुण्ठ से भूतल पर आने के लिए जब निश्चय किए तब उनकी प्रियतमा नीलादेवी स्वरूपा श्रीराधा ने कहा मैं आपके वियोग में कैसे यहाँ रहूँगी। आप भूतल पर चल रहे हैं तो मैं भी लीला को सरस बनाने के लिए आपके साथ वहाँ रहूँगी; परन्तु जहाँ वृन्दावन, यमुना नदी और गोवर्धन पर्वत ये तीन नहीं रहते हैं वहाँ मुझे सुख नहीं मिलता। श्रीराधा की बात सुनकर अपने नित्यधाम से चौरासी कोस की भूमि को इस भूतल पर भेजा। जो श्रीधाम वृन्दावन नाम से प्रसिद्ध हुई। वृन्दावन २४ वनों के साथ भूतल पर आया।

भारतवर्ष के पश्चिम दिशा में सालमली द्वीप के अन्दर द्रोणाचल से गावर्धन पर्वत उत्पन्न हुआ। हिमालय और सुमेरु आदि समस्त पर्वतों ने गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा कर उसे विधिवत् पूजन किया। तदनन्तर पर्वतों ने गोवर्धनपर्वत से कहा कि तुम जहाँ साक्षात् परिपूर्णतम भगवान श्रीकृष्ण निवास करते हैं वहाँ सुशोभित होते हो। तुम गोवर्धन नाम से प्रसिद्ध हो, तुम समस्त पर्वतों में गिरिराज कहे जाते हो। तुम वृन्दावन की गोद में गोलोक के मुकुटमणि हो तथा पूर्ण परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण के हाथों में किसी विशेष समय में क्षत्र के समान शोभा पाये हो। सभी पर्वतों ने गोवर्धनपर्वत को सम्मानित किया है, अत: ये गिरिराज नाम से प्रसिद्ध है।

एक समय महामुनि पुलस्त्यजी तीर्थ यात्रा के लिए भूतल पर भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने द्रोणाचल के पुत्र गोवर्धनपर्वत को देखा। सैकड़ों पर्वतों से सुशोभित वह रत्नमय मनोहर तपस्या करने के लिए उपयुक्त मालुम हुआ। वह मयूरों की मधुर ध्वनि से सुशोभित गोवर्धनपर्वत मुमुक्षुओं के लिए मोक्षप्रद प्रतीत हो रहा था। पुलस्त्यमुनि के मन में गोवर्धनपर्वत को प्राप्त करने की इच्छा हुई। उन्होंने

पृ० १३ का शेष

कारण वे कालिन्दी कहलाती हैं। सूर्य की पत्नी संज्ञा से भी यमी की उत्पत्ति हुई है जो यमुना के रूप में परिणत हुई है। इसलिए यमुना को सूर्यतनया भी कहते हैं।

परमपावन यमुना जल में स्नान

जो फल पुष्कर, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, काशी आदि तीर्थों में स्नान करने से नहीं मिलता वह फल यमुना में स्नान करने से प्राप्त होता है। यमुना में सकाम अथवा निष्काम स्नान करने से लोक और परलोक का सुख प्राप्त होता है। जैसे कामधेनु और चिन्तामणि मनोगत कामनाओं को पूर्ण कर देती हैं उसी प्रकार यमुना में किया हुआ स्नान मनोरथों को पूर्ण करता है। सत्ययुग में तप, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजा और कलियुग में दान सर्वश्रेष्ठ माना गया है; किन्तु यमुना का स्नान सदा ही शुभकारिणी रहा है। यमुना में वर्ण या आश्रम का भेद नहीं है उसमें सभी लोग स्नान करके फल प्राप्त करते हैं। अगर जीवन में यमुना का स्नान नहीं मिला तो शरीर धारण से क्या लाभ? यमुना का स्नान सभी पापों को उसी प्रकार दग्ध कर देता है जैसे आग लकड़ी को जला डालती है।

मथुरा में यमुना का स्नान मोक्षप्रद होता है और दूसरी जगह महापातकों को नष्ट करता है। मथुरा में स्नान से विष्णु भक्ति मिलती है।

*****

द्रोणाचलपर्वत के पास जाकर कहा कि हे द्रोण! तुम पर्वतों के स्वामी हो, समस्त देवता तुम्हारा समादर करते हैं। तुम दिव्य औषधियों से सम्पन्न और मनुष्यों को सदा जीवन देने वाले हो। मैं काशी का निवासी हूँ। तुम्हारे निकट याचक होकर आया हूँ। तुम अपने पुत्र गोवर्धन को मुझे दे दो। जहाँ गंगा नदी प्राप्त होती है तथा साक्षात् विश्वनाथ विराजमान हैं मैं वहीं तुम्हारे पुत्र को स्थापित करूँगा। वहाँ कोई दूसरा पर्वत नहीं है। उसी के ऊपर मैं तपस्या करूँगा ऐसी मेरी अभिलाषा है। मुनिवर पुलस्त्य के वचन सुनकर पुत्र स्नेह से द्रोणाचल के नेत्रों में आँसु भर आये। द्रोणाचल ने कहा कि यद्यपि मैं पुत्र स्नेह से व्याकुल हूँ। यह पुत्र मुझे अत्यन्त प्रिय है। तथापि आपके शाप से भयभीत होकर मैं इसे आपको देता हूँ। द्रोणाचल ने अपने पुत्र गोवर्धन पर्वत से कहा कि तुम मुनि के साथ कल्याणमय कर्मक्षेत्र भारत वर्ष में जाओ। गोवर्धन ने महामुनि पुलस्त्य से कहा कि मेरा शरीर आठ योजन लम्बा, दो योजन ऊँचा और पाँच योजन चौड़ा है। ऐसी दशा में आप किस प्रकार मुझे ले चलेंगे। पुलस्त्य ने गोवर्धनपर्वत से कहा तुम मेरे हाथ पर बैठकर सुखपूर्वक चलो। जब तक मैं काशी नहीं पहुँच जाता हूँ। तब तक में तुम्हें हाथ पर ही रखूँगा। गोवर्धन ने कहा मेरी एक प्रतिज्ञा है कि आप मुझे एक बार जहाँ रख देंगे वहीं मैं स्थापित हो जाऊँगा। पुलस्त्य मुनि ने अपने दाहिने हाथ पर गोवर्धनपर्वत को रखकर धीरे-धीरे व्रजमण्डल में आ पहुँचे। गोवर्धनपर्वत को अपने पूर्व जन्म की बात स्मरण में था, यहाँ व्रज में भगवान कृष्ण के अवतार होंगे वे ग्वालबालों के साथ बाललीला करेंगे। उतना ही नहीं भगवान दानलीला और मानलीला भी करेंगे। अत: मुझे यहाँ से अन्यत्र नहीं जाना चाहिए। यह व्रजभूमि और यमुना ये दोनों दिव्यधाम से आयी हैं। श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण का शुभागमन होगा, मैं उनका उत्तम दर्शन करके कृत्य-कृत्य हो जाऊँगा। ऐसा विचार कर गोवर्धन ने मुनि के हथेली पर अपने शरीर का भार बहुत अधिक बढ़ा दिया। उससे मुनि अत्यन्त थक गये, उन्हें पहले की कही हुई बात याद नहीं रही। उन्होंने पर्वत को हाथ से उतारकर व्रजमण्डल में रख दिया। पुलस्त्यमुनि लघुशङ्का करने लगे। तदनन्तर उन्होंने स्नान करके गोवर्धनपर्वत से कहा अब उठो। पुलस्त्यजी अपने तेज और बल से गोवर्धनपर्वत को उठाने के लिए प्रयत्न करने लगे; परन्तु उनसे गोवर्धनपर्वत नहीं उठ सका। तब उन्होंने कहा हे पर्वत श्रेष्ठ! चलो-चलो भार अधिक न बढाओ, न बढ़ाओं। मैं जान गया तुम रूठे हुए हो शीघ्र बताओं तुम्हारा क्या अभिप्राय है। गोवर्धनपर्वत ने कहा इसमें मेरा दोष नहीं है। आपने ही मुझे स्थापित किया है। अब मैं यहाँ से नहीं उठूँगा। मैंने पहले ही कह दिया था कि कहीं भी भूमि पर आप मुझे एक बार रख देंगे तो मैं पुन: दूसरे जगह नहीं जाऊँगा। उस मेरी प्रतिज्ञा को आप स्मरण करें। गोवर्धन के वचन सुनकर पुलस्त्य की सारी इन्द्रियाँ क्रोध से चञ्चल हो उठीं। उनके ओठ फड़कने लगे। उन्होंने गोवर्धन-पर्वत को शाप दिया कि तुमने मेरा मनोरथ सफल नहीं किया है, अत: तुम प्रतिदिन तिल-तिल भर क्षीण होता जाएगा।

गिरे त्वयाऽतिधृष्टेन न कृतो मे मनोरथः।
तस्मात्तु तिलमात्रं हि नित्यं त्वं क्षीणतां व्रज।।

(गर्ग सं०–२/४८)

महामुनि पुलस्त्यजी गोवर्धनपर्वत को शाप देकर काशी चले गये। उसी दिन से गोवर्धनपर्वत प्रतिदिन तिल-तिल भर क्षीण (भूमि में धँसता) होता जा रहा है। जो मनुष्य गोवर्धनपर्वत का दर्शन करता है, उसे कलि प्रभावित नहीं करता। यह गोवर्धनपर्वत का परम पवित्र चरित्र मनुष्यों के बड़े-बड़े पापों को नाश कर देता है। गिरिराज गोवर्धनपर्वत

के दर्शन से मनुष्य के सकल मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। अत एव आज भी लाखों भक्तगण सतत गिरिराज की परिक्रमा करते हुए देखे जाते हैं। इन्द्र के अभिमान को चूर्णकर देने के लिए लीलाविहारी भगवान श्रीकृष्ण ने व्रज में होने वाली इन्द्र की वार्षिक पूजा बन्द करा दी थी। उन्होंने वहाँ गोवर्धनपर्वत, गौओं और ज्ञानियों की पूजा करने की अनुमति दी। बहुत बार भगवान श्रीकृष्ण ने व्रजवासियों को विपत्तियों से बचाया था। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण के वचन पर विश्वस्त होकर गोपों ने गोवर्धनपर्वत के पूजन का निर्णय लिया। पूजन के लिए निर्धारित समय से पूर्व भगवान ने एक रूप से पर्वताकार होकर पूजन स्थल पर अपना मुख प्रकट कर दिया और (दूसरे रूप से) जैसा रूप में थे उससे ग्वालवालों को पूजन के लिए प्रेरित किया तथा सबों के साथ मिलकर गोवर्धनपूजन करने लगे। पूजनकाल में जो भी सामान समर्पित किया जाता था, उसे गोवर्धनरूप से भगवान श्रीकृष्ण खाते-पीते जाते थे। उससे सारे व्रजवासियों को अपार प्रसन्नता हुई। उन लोगों ने आज की पूजा को ही यथार्थ समझा। पूजा समाप्त होने के पश्चात् इन्द्र ने पता लगाया कि व्रज में मेरी पूजा क्यों नहीं हुई। जब यह ज्ञात हो गया कि सप्त-वर्षीय बालक श्रीकृष्ण के बहकावे में आकर व्रजवासियों ने मेरी पूजा बन्द कर दी है, तब देवराज इन्द्र ने क्रोधित होकर व्रज को जलाप्लावित कर देने का निश्चय कर लिया। उन्होंने मेघ को आदेश दिया कि मूसलाधार जल वर्षाकर व्रज को डूबा दो। मेघ मूसला-धार जल बर्षाने लगा। व्रजवासियों का कष्ट देखकर सर्व-शक्तिमान भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें आश्रित समझकर अपने एक हाथ पर गिरिराज को उठा लिया।

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम्।
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः।।

(भाग०-१०/२५/१९)

पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च। इस उपनिषद् मन्त्र के अनुसार पराशक्ति सम्पन्न भगवान श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उसी प्रकार उखाड़कर अपने एक हाथ पर रख लिया जैसे छोटे-छोटे बालक बरसाती छत्ते के पुष्प को उखाड़कर हाथ में रख लेते हैं। उन्होंने अपने शेषनाग को आदेश दिया कि मैं पर्वत उखाड़ा हूँ इसके चारों ओर बाँध की तरह पड़कर बाहर की पानी को गड्ढे में न आने दो और अपने सुदर्शन चक्र को कहा कि तुम पर्वत पर बैठकर ऊपर के सब पानी को सोखते जाओ। तदन्तर सारे व्रजवासी अपने बछड़े आदि के साथ पर्वत के तले चले गये। सात दिनों तक भगवान ने एक ही हाथ पर उस विशाल गोवर्धनपर्वत को धारण किये रहे। जब वर्षा बन्द हो गयी तब उन्होंने गोवर्धनपर्वत को रख दिया। इस समाचार से जब इन्द्र अवगत हुआ तब उसे भगवान श्रीकृष्ण की महिमा समझ में आयी। वह स्वर्ग से ऐरावत हाथी की सूड़ में आकाश गंगा का जल और कामधेनु का दूध लेकर व्रज में उस समय आये जिस समय भगवान गाय चरा रहे थे। इन्द्र ने आते ही सप्तवर्षीय बालरूप धारण किए हुए भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में अपने शिर का मुकुट रखकर शरणागत हो गया। उसे यह अभिमान था कि तीनों लोकों का स्वामी मैं ही हूँ, वह अभिमान दूर हो गया। भगवान अपराध के लिए बार-बार क्षमा माँगकर भगवान को कामधेनु के दूध और आकाश गङ्गा के जल से अभिषेक करके गोविन्द नाम से सम्बोधित किया।

गिरिराज में प्रवेश कर भगवान ने व्रजवासियों से पूजा ली। इसलिए गोवर्धनपर्वत भगवान श्रीकृष्ण के स्वरूप ही माना गया है। वहाँ भगवान ने अपने सङ्कल्प से मानसी गङ्गा प्रकट की है जो बड़ा सरोवर के रूप में आज भी दर्शन दे रही है। इन्द्र ने जहाँ भगवान श्रीकृष्ण का अभिषेक किया है वहाँ एक

शेष पृ० १७ पर

महारासलीला का रहस्य

आर्ष ग्रन्थों में श्रीमद्भागवत ग्रन्थ रत्न है। इसके दशम और एकादश स्कन्धों में परमानन्दस्वरूप लीला पुरुष भगवान श्रीकृष्ण की दिव्याति-दिव्य लीलाओं का वर्णन किया गया है। लीला विहारी श्रीश्याम सुन्दर सर्वथा रसमय हैं। कोटि-कोटि कन्दर्प कमनीय मनोहर भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति भक्तों के लिए जैसी मन-मोहिनी है वैसी ही भगवान की लीलाएँ भी लोकोत्तर आनन्दातिरेक का सञ्चार करने वाली हैं। भगवान श्रीकृष्ण की व्रज लीलाएँ भक्तों और कविवरों का सर्वस्व है। इसलिए रासलीला का आविर्भाव एक मात्र रसाभिव्यक्ति के लिए ही हुआ था, वह महारास माधुर्य रस का विलास था। भगवान श्रीकृष्ण की रास क्रीड़ा जैसी मधुर है वैसी ही रहस्यमयी भी है। रास के भीतर गुह्यातिगुह्य रहस्य छिपा हुआ है। वह आपातत: दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। वह इतना गूढ़ है कि उसमें जितना प्रवेश किया जाय उतना ही अधिकाधिक दु:खग्राह्य प्रतीत होता है। रासलीला का वर्णन श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में अध्याय उन्तीस से तैंतीस तक प्राप्त होती है। ये पाँच अध्याय 'रासपञ्चाध्यायी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये श्रीमद्भागवत रूप कलेवर के पाँच प्राण हैं। उन्हें श्रीमद्भागवत का हृदय भी कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

भागवत में भक्ति, विरक्ति और भगवत्प्रबोध इन तीनों का ही वर्णन है। लीला विशेष के लिए इसमें अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग का चित्रण है। मथुरावासियों की अपेक्षा गोकुलवासी अधिक अन्तरङ्ग हैं। इनमें भी श्रीदामा आदि नित्य सखा अन्तरङ्ग हैं उनकी अपेक्षा गोपाङ्गनाएँ अन्तरङ्ग हैं, गोपाङ्गनाओं में ललिता, विशाखा आदि प्रधान यूथेश्वरियाँ अधिक अन्तरङ्ग हैं । और इन सभी की अपेक्षा श्रीराधिका जी अन्तरङ्गतम हैं। रासलीला में सर्वान्तरङ्ग व्रजाङ्गनाओं का ही प्रसङ्ग है। यह सर्वगुह्यतम् लीला है। इनमें प्रथम भगवान श्रीकृष्ण ने गोपों को अपना स्वरूप साक्षात्कार कराया था। कालियदमन, गोवर्धनधारण, अघासुर आदि का वध एवं अन्य अनेक मानवातीत लीलाओं के कारण गोपगण यह समझ चुके थे कि कृष्ण कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। वरुण लोक में उनका ऐश्वर्य देखकर गोपों को यह निश्चय हो गया था कि ये साक्षात् भगवान हैं, भगवान ने अपने योगबल से उन्हें अपने दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार कराया और फिर वैकुण्ठ लोक में ले जाकर अपने विशेष स्वरूप का दर्शन कराया। इस प्रकार उन्होंने गोपों को रास दर्शन का अधिकारी बनाया।

पृ० १६ का शेष

बड़ा सरोवर अभी भी दृष्टिगोचर होता है, जो गोविन्द सरोवर नाम से प्रसिद्ध है। उस गोवर्धन के निकट अन्य भी बहुत से सरोवर हैं। गोवर्धन के सप्तकोसी प्रदक्षिणा में बहुत भक्त एक-एक जगह एक सौ आठ बार साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए प्रदक्षिणा करते हुए देखे गये हैं। वे १०८ बार पाषाण के खण्ड रखे रहते हैं उसी को रखकर गणना करते हैं। वैसे लोगों को सम्पूर्ण गोवर्धन की प्रदक्षिणा में दो अढ़ाई वर्ष लग जाते हैं। उनके कुछ लोगों के साथ वाहन पर आहार की सामग्री चलती है और कुछ लोगों को परमार्थियों के द्वारा भोजन प्राप्त होता है। जैसे दक्षिण भारत में भगवान श्रीवेङ्कटेश जी के प्रति आस्थावानों की भीड़ देखी जाती है, वैसे ही भगवत्स्वरूप गोवर्धन के दर्शनार्थियों की भीड़ रहती है। भगवान वेङ्कटेश की भाँति गोवर्धन के दर्शन और प्रदक्षिणा से भक्तों का सर्वविध मनोरथ पूर्ण होता है। ऐसी भक्तों की आस्था है।

*****

इति सञ्चिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः ।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ।।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ।
यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ।।
ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात् पुरा ।।

(भाग०–१०/२८/१४-१६)

यह अधिकार स्वरूप साक्षात्कार के विना प्राप्त नहीं होता है। श्रीमद्भागवत में यह नहीं कहा गया कि वैकुण्ठधाम में गोपों को अपने स्वरूप का दर्शन कराकर भगवान पुनः व्रज में ले आये। इससे कुछ लोगों ने अपना मन्तव्य व्यक्त किया है कि यह भगवान के नित्यधाम की नित्य लीला का ही वर्णन है। इस लोक में यह लीला नहीं हुई है। ऐसी स्थिति में श्रीभगवान श्रीकृष्ण की लोकोत्तर लीला के विषय में कोई आपत्ति ही नहीं हो सकती।

श्रीकृष्ण ब्रह्म हैं, गोपाङ्गनाएँ जीव हैं। इन दोनों का परस्पर संश्लेष हो तो स्थूल दृष्टि से कामक्रीड़ा मालूम होती है; परन्तु अन्तरङ्ग दृष्टि से तो यह जीव और ब्रह्म का अद्भुत संयोग है। श्रीमद्भागवत में यह उल्लेख है कि गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्ण के वियोग में संतप्त रहती थीं आँखें हर समय श्रीकृष्ण दर्शन के लिए लालायित रहती थी। भगवान भी उन गोपियों के विरह व्यथा से व्याकुल रहते थे। उन दोनों का पारस्परिक संयोग बहुत अभीष्ट था। प्रेम का यह स्वरूप है कि प्रेमी परस्पर में गाढ़ालिङ्गन के लिए उत्सुक रहा करते हैं। माता अपने सुकुमार शिशु को हृदय से लगाने के लिए कितना उत्सुक रहती है। जो जितना अधिक प्रेमी होता है उसका व्यवधान उतना ही अधिक असह्य होता है। गोपाङ्गनाएँ और भगवान श्रीकृष्ण–ये दोनों ही आनन्द स्वरूप थे। पद्मपुराण के अनुसार त्रेता में जिन ऋषियों की इच्छा श्रीराम के साथ रहने की थी वे सभी द्वापर में गोपी बन गये।

पुरामहर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः ।
दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन सुविग्रहम् ।
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूताश्च गोकुले ।।

भगवल्लीला रस का अनुभव के लिए श्रुतियाँ गोपियाँ वन गयी थीं। ब्रह्मा के आदेश से देवाङ्गनाएँ भी गोपी बन गयी थीं—

गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिनां गोपकन्यका ।
देवकन्याश्च राजेन्द्र न मनुष्यः कथञ्चन ।।

अतः उनकी लीला प्राकृत नहीं हो सकती। भगवान श्रीकृष्ण में मर्यादा उल्लङ्घन का प्रश्न ही नहीं उठता। भगवान ने भक्तों के हित के लिए उपनयन से पूर्व माखन अपहरण आदि जो अमर्यादित लीलाएँ की हैं, बाद में पीछे उनकी सभी लीलाएँ लोक संग्रह के लिए मर्यादित हुई हैं। भगवान का मर्यादा उलङ्घन में भी मर्यादा का पालन ही उद्देश्य है।

भगवान ने काम जय के लिए यह अद्भुत लीला की है। अत एव श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीधराचार्य ने लिखा है—

ब्रह्मादि जयसंरूढ दर्प कन्दर्प दर्पहा ।
जयति श्रीपतिर्गोपीरासमण्डन मण्डनः ।।

अर्थात् ब्रह्मादि लोकपालों को जीत लेने के कारण कामदेव अत्यन्त अभिमानी हो गया था, उस कामदेव के दर्प को दलित करने वाले, गोपियों के रासमण्डल के भूषण स्वरूप श्रीलक्ष्मीपति की जय हो।

वस्तुतः रासक्रीड़ा में प्रवृत्त होकर भगवान ने मर्यादा का उलङ्घन नहीं किया है, बल्कि उन्होंने तत्त्वज्ञों की निष्ठा की दृढ़ता प्रदर्शित की है। जो भगवान साक्षात् शृङ्गार रस की अभिवृद्धि करने वाले हैं, उनका अनेक विध हाव-भाव आदि का सम्प्रयोग होने पर भी उनका चित्त तनिक भी विचलित नहीं हुआ। भगवान सर्वेश्वर हैं उनकी लीला काम जय के लिए हुई थी। काम ने ब्रह्मा को जीत लिया था। उससे उसका अभिमान बहुत बढ़

गया था। भगवान ने इस लीला से कामदेव को परास्त कर दिया। कामदेव अपने प्रभाव का प्रयोग करने के लिए जिस समय अपने दल-बल के साथ भगवान श्रीकृष्ण की परम सुन्दर मूर्ति के सामने उपस्थित हुआ, उस समय वह उनके लावण्य को देखकर स्वयं धूलि में मिल गया। अत एव श्री शुकदेव जी ने कहा कि साक्षान्मन्मथमन्मथ: अर्थात् श्रीकृष्ण के पादारविन्द की नखमणि चन्द्रिका की एक रश्मि से माधुर्य का अनुभव करके कन्दर्प का दर्प शान्त हो गया। उपनिषदों में भी रमन, क्रीड़ा आदि शब्द का प्रयोग भगवान के लिए किया गया है—**'स एकाकी न रमेत'**।

महायोगेश्वर श्रीकृष्ण यमुना जी के पुलिन पर गोपियों के साथ रसमयी रासक्रीड़ा प्रारम्भ किये। उस समय दो-दो गोपियों के बीच भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। सहस्त्रों गोपियों के साथ रासलीला आरम्भ हुई। उस समय आकाश में सैकडों विमानों की भीड़ लग गयी। सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियों के साथ वहाँ आ गये और रासोत्सव का दर्शन में मग्न हो गये। स्वर्ग की दिव्य दुन्दुभियाँ अपने आप बजने लगीं।

स्वर्गीय पुष्पों की वर्षा होने लगी। गान्धर्व गण अपनी-अपनी पत्नियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण के निर्मल यश के गान करने लगे। 'जगुर्गन्धर्वपतय: सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम्' गोपाङ्गनाओं के साथ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण नृत्य गान आदि करने लगे।

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।
रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया।।

उनकी अद्भुत रासलीला को देखकर सभी देवगण आनन्द मग्न थे। रास के पश्चात् ब्राह्म मुहूर्त्त में भगवदाज्ञा के अनुसार सब गोपियाँ घर चली गयीं। व्रजवासी गोपों की भगवान श्रीकृष्ण के प्रति दोष बुद्धि नहीं हुई; क्योंकि भगवान की योग माया से मोहित होकर सब गोप अपनी पत्नियों को अपने पास ही देख रहे थे। जब उनकी पत्नियाँ उनके पास नहीं होती तब वे कृष्ण को दोषी बताते।

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया।
मन्यमाना: स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकस:।।

गोपियों के प्रेम की भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुख से प्रशंसा की है। उद्धवादि मनीषियों ने उनको मुक्तकण्ठ से सराहा है। यदि गोपियाँ वास्तव में व्यभिचारदुष्टा होतीं तो भगवान उनकी प्रशंसा कैसे करते? गोपियों की भक्ति सर्वथा अव्यभिचारी और अहैतुकी थी। उनका भाव पवित्र था और उसी के अनुसार उनकी रासलीला भी पवित्र थी। उनका चलना, बोलना, मिलना, नाचना और गाना ये सब पवित्र थे। उनमें किसी कुत्सित भाव की कल्पना नहीं की जा सकती। भक्ति की साधना से काम-क्रोधादि दोषों की जड़ उखड़ जाती है। फिर भक्तिमती गोपियों में कामादि दोष कैसे रह सकते हैं? उनका रास भगवान के प्रेम का मूर्तिमान स्वरूप था। भगवान कृष्ण स्वयं रस स्वरूप हैं। **'रसो वै स:'** उन्हें प्राप्त करके जीव परम आनन्दित होता है। 'रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति' (तैत्तिरीयोपनिषद्)।

जिस दिव्य क्रीड़ा में एक ही रस अनेक रसों के रूप में होकर अनन्त-अनन्त रसों का रसास्वादन कराएँ तथा एक ही रस अनेक अस्वाद-अस्वादक, लीला, धाम, विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपन के रूप में क्रीड़ा करे उसका ही नाम रास है।

भगवान जिस समय रासलीला करते थे। उस समय उनकी उम्र मात्र आठ वर्ष की थी और इस वय में काम भाव का सर्वथा अभाव रहता है। वैदिक या पारमार्थिक दृष्टि से तो भगवान दिव्य हैं और उनका शरीर व शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग भी दिव्य है।

*****

व्रजभूमि रज की महिमा

श्रीभाष्यकार स्वामी रामानुजाचार्य के निकटतम अन्तरङ्ग शिष्य श्रीकुरेश स्वामी थे। वे परममेधावी थे। श्रीभाष्य रचना काल में श्रीकुरेश स्वामी ने स्वामी जी को पूर्ण सहयोग किया था। वे भगवान के चरणों में सदा समर्पित रहते थे। श्रीभाष्यकार स्वामी श्रीकुरेशजी को जगत् कल्याण में सहयोगी समझते थे। भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण इन दो अवतारों का विशेष वैशिष्ट्य है। इन्हीं दोनों अवतारों में सौशील्य, सौलभ्य, वात्सल्य आदि भगवान के दिव्य गुणों का प्राकट्य हुआ है। श्रीकुरेश स्वामी ने भगवान के इन्हीं अवतारों के दिव्य गुणों का विशेष रूप से चिन्तन किया है। उन दो अवतारों में भगवान के जिन दिव्य गुणों का चिन्तन किया है वे अतिमानुषस्तप नाम से प्रसिद्ध है। इस स्तोत्र से भगवान के उन दिव्य गुणों का चिन्तन किया है जो गुण मानव में सम्भव नहीं है। इसलिए उसका अतिमानुषस्तव नाम रखा गया है।

इस स्तव में श्रीकुरेश स्वामी ने वृन्दावन में भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों से स्पर्शित परम पवित्र रज की अपूर्व महिमा बतलायी है, जैसा उन्होंने अनुसन्धान किया है वैसा सभी भक्तों को अनुसन्धान करना चाहिए। अतिमानुषस्तव में चार श्लोकों से व्रज की परम पवित्र रज का विशेष महत्त्व बतलाया गाया है।

१. भगवान श्रीकृष्ण के चरण से पवित्र गिरिराज गोवर्द्धन पर्वत, यमुना नदी, वृन्दावन प्राचीन पुरी मथुरा ये सब आज भी भाग्यवान पुरुषों को ही दर्शन के लिए सुलभ हैं। ये सब स्थान भगवान के परमसुन्दर चरण कमलों से विशेष सेवित होने से परम प्रिय हैं।

३. श्रीकुरेश स्वामी ने भगवान से कहा हे प्रभो! नित्यधाम वृन्दावन में आप आवरण रहित (विना खड़ाऊँ, जूते आदि के) चरणों से सर्वत्र विचरण किये हैं। उस समय जिन जड़-चेतन, क्षूद्र कीट, दूब पर्यन्त जीवों का आपके चरणों से स्पर्श हुआ है वे सब परमपद में चले गये; परन्तु उस अवसर पर हमारा कीट आदि जीवों तथा दूर्बा आदि जड़ों में भी जन्म नहीं हुआ था, इसलिए हमारी आत्मा का उद्धार नहीं हुआ, बल्कि हमारी आत्मा का नाश ही हुआ है। वही पापी हम आपके दिव्य चरण कमलों का कब आश्रित होंगे।

३. हे करुणानिधि प्रभो! महारास लीला के समय रात्रियों में आपने अन्तर्धान होकर जिन गोपियों का त्याग किया था, वे सब गोपियाँ आपके विरह में कामपीड़ित होकर अपने अङ्गों में आपके चरण से स्पर्शित रज को लगाकर विरहज्वर को शान्त की थीं। हाय! उस समय हम उस रज में एक रजकण होकर भी क्यों नहीं जन्में? व्रज में आपके चरण रजकण के सम्बन्ध से भी मुक्ति हो जाती है, अत: आप उसी का सम्बन्ध करा देते।

४. वृन्दावन में फूलों को चुनते समय आपके चरणों को जिन लताओं अथवा वनस्पतियों ने प्राप्त किया है, उनके वंश में उत्पन्न आधुनिक लतायें एवं वृक्षादि आज भी वृन्दावन की धरती तथा मेरी बुद्धि को परिष्कृत कर रहा है। उन वृन्दावन के वृक्षों एवं लताओं से भी मेरा सम्बन्ध हो जाय तो मेरी मुक्ति निश्चित हो जाय। आज भी वृन्दावन के लता वृक्षादि उनके वंश में उत्पन्न हुए हैं, जिन्हें आपके अवतार काल में चरणों का स्पर्श प्राप्त हुआ है। अत: यदि आज भी मेरा जन्म किसी प्रकार उनमें हो जाय या उनसे मेरा सम्बन्ध

शेष पृ० २१ पर

व्रज की गोपियों से उद्धव को मिली प्रेम की शिक्षा

उद्धव जी भगवान के सखा-भक्त थे। अक्रूर के साथ जब भगवान व्रज से मथुरा आ गये और कंस को मारकर सभी यादवों को सुखी बना दिए, तब भगवान ने एकान्त में अपने प्रिय सखा उद्धव को बुलाकर कहा उद्धव! व्रज की गोपाङ्गनाएँ मेरे वियोग में व्याकुल होंगी, उन्हें जाकर तुम समझा आओ। उन्हें मेरा संदेश सुना आओ कि मैं तुमसे अलग नहीं, सदा तुम्हारे ही साथ हूँ। उद्धव जी अपने स्वामी की आज्ञा पाकर नन्द-व्रज में गये। वहाँ चारों ओर से उन्हें व्रजवासियों ने घेर लिया और लगे भाँति-भाँति के प्रश्न करने। कोई आँसू बहाने लगा, कोई मुरली बजाते-बजाते रोने लगा, कोई भगवान का कुशल-समाचार पूछने लगा। उद्धव जी ने सबको यथायोग्य उत्तर दिया और सबको धैर्य बँधाया।

एकान्त में जाकर उन्होंने गोपियों को अपना ज्ञान-संदेश सुनाया। उन्होंने कहा—भगवान वासुदेव किसी एक जगह नहीं हैं, वे तो सर्वत्र व्यापक हैं। उनमें भगवत् बुद्धि करो, सर्वत्र उन्हें देखो। गोपियों ने रोते-रोते कहा उद्धव जी! तुम ठीक कहते हो, किन्तु हम गँवारी वनचरी इस गूढ़ ज्ञान को भला कैसे समझ सकती हैं? हम तो उन श्यामसुन्दर की भोली-भाली सूरत पर ही अनुरक्त हैं। उनका वह हास्ययुक्त मुखारविन्द, वह काली-काली घुँघराली अलकावली, वह वंशी की मधुर ध्वनि हमें हठात् अपनी ओर खींच रही है। वृन्दावन की समस्त भूमि पर उनकी अनन्त स्मृतियाँ अङ्कित हैं। तिलभर भी जमीन खाली नहीं, जहाँ उनकी कोई मधुर स्मृति न हो। हम इन यमुनापुलिन, वन, पर्वत, वृक्ष और लताओं में उन श्यामसुन्दर को देखती हैं। उन्हें देखकर उनकी स्मृति मूर्तिमान होकर हमारे हृदय पटल पर नाचने लगती है।

उनके ऐसे अलौकिक प्रेम को देखकर उद्धव जी अपना समस्त ज्ञान भूल गये और अत्यन्त करुणा के स्वर में कहने लगे—इस पृथ्वी पर केवल इन गोपियों का ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है; क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान श्रीकृष्ण के परम प्रेममय दिव्य महाभाव में स्थित हो गयी हैं।

पृ० २० का शेष

हो जाय तो मेरा कल्याण अवश्य हो जाएगा।

१. **गोवर्द्धनो गिरिवरो यमुना नदी सा**
वृन्दावनं च मथुरा च पुरी पुराणी।
अद्यापि हन्त सुलभाः कृतिनां जनाना-
मेते भवच्चरणचारजुषः प्रदेशाः।।

२. **वृन्दावने स्थिरचरात्मककीटदूर्वा-**
पर्य्यन्तजन्तुनिचये बत मे तदानीं।
नैवालभामहि जनिं हतकास्त एते
पापाः पदं तव कदा पुनराश्रयामः।।

३. **हा जन्म तासु सिकतासु मया न लब्धं**
रासे त्वया विरहिता किल गोपकन्या।
या स्तावकीनपदपंक्तिजुषो जुषन्तः
निक्षिप्य तत्र निजमङ्गमनङ्गतप्तम्।।

४. **आचिन्वतः कुसुम मङ्घ्रिसरोरुहन्ते**
ये भेजिरे बत वनस्पतयो लता वा।
अद्यापि वत्कुलभुवः कुलदैवतं मे
वृन्दावनं मम धियश्च सनाथयन्ति।।

*****

प्रेम की यह ऊँची-से-ऊँची स्थिति संसार के भय से भीत मुमुक्षु जनों के लिये ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े मुनियों, मुक्त पुरुषों तथा हम भक्तजनों के लिए भी अभी वाञ्छनीय ही है। हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। सत्य है, जिन्हें भगवान श्रीकृष्ण की लीला-कथा के रस का चसका लग गया है, उन्हें कुलीनता की, द्विजाति समुचित संस्कार की और बड़े-बड़े यज्ञ-यागों में दीक्षित होने की क्या आवश्यकता है? अथवा यदि भगवान की कथा का रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई, तो अनेक महाकल्पों तक बार-बार ब्रह्मा होने से ही क्या लाभ?

मेरे लिये तो सबसे अच्छी बात यही होगी की मैं इस वृन्दावनधाम में कोई झाड़ी, लता अथवा ओषधि–जड़ी-बूटी ही बन जाऊँ। यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा, तो मुझे इन व्रजाङ्गनाओं की चरणधूलि निरन्तर सेवन करने के लिये मिलती रहेगी। इनकी चरण-रज में स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। धन्य हैं ये गोपियाँ जिनको छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन स्वजन सम्बन्धियों तथा लोकवेद की आर्य-मर्यादाओं का परित्याग करके उन्होंने भगवान की पदवी, उनके साथ तन्मयता, उनका परम प्रेम प्राप्त कर लिया है—औरों की तो बात ही क्या भगवद्वाणी, उनकी नि:श्वासरूप समस्त श्रुतियाँ, उपनिषदें भी अब तक भगवान के परम प्रेममय स्वरूप को ही ढूंढ़ती रहती हैं, प्राप्त नहीं कर पाती।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ।। (भाग०–१०/४७/९)

स्वयं भगवती लक्ष्मी जी जिनकी पूजा करती रहती हैं–ब्रह्मा, शङ्कर आदि परम समर्थ देवता, पूर्णकाम आत्माराम और बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदय में जिनका चिन्तन करते रहते हैं, भगवान श्रीकृष्ण के उन्हीं चरणारविन्दों को रास-लीला के समय गोपियों ने अपने वक्ष:स्थल पर रखा और उनका आलिङ्गन करके अपने हृदय की जलन, विरह-व्यथा शान्त की। नन्दबाबा के व्रज में रहने वाली गोपाङ्गनाओं की चरणधूलि को मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ। इन गोपियों ने भगवान श्रीकृष्ण की लीला-कथा के सम्बन्ध में जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकों को पवित्र कर रहा है और सदा-सर्वदा पवित्र करता रहेगा।

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्‌गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ।।

(भाग० १/४७/६३)

*****

यज्ञो वै विष्णुः

यज्ञ की महिमा अपूर्व तथा चमत्कारपूर्ण है। यज्ञ ने ही हमें वैकुण्ठाधिपति वेदान्तवेद्य भगवान विष्णु को इस भूतल पर श्रीराम रूप में दर्शन कराया। यज्ञ की रक्षा के लिए ही याज्ञ पुरुष परमात्मा श्रीराम का अवतार हुआ। भगवान श्रीराम ने ही तपस्या तथा यज्ञानुष्ठान करने वाले मन्त्रद्रष्टा ऋषि-मुनियों को भयरहित किया।

यज्ञ से प्राणियों की उत्पत्ति तथा पालन होता है। यज्ञ से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न उत्पन्न होते हैं। अन्नाहार से वीर्य बनता है और उससे प्राणियों की उत्पत्ति होती है। प्राणी आहार से ही जीवित रहता है।

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद् भवति प्रजन्ये यज्ञः कर्म समुद्भवः ।।

यज्ञ से वर्षा कैसे होती है यह रहस्य मनु जी ने बतलाया है कि आह्वनीय पदार्थ से अग्निकुण्ड

में आहुतियाँ दी जाती हैं। उससे जो धुएँ उत्पन्न होते हैं, उन्हें सूर्य अपनी किरणों द्वारा आकाश में ले जाता है। उनसे मेघ तैयार होता है। समयानुसार उसी से वर्षा होती है।

अग्निकुण्ड में जो आह्वनीय पदार्थ दिये जाते हैं। उनके तीन अंश होते हैं–एक स्थूल अंश राख बन जाता है, दूसरा अंश धुएँ द्वारा आकाश में जाकर वायुमण्डल को शुद्ध बनाता है, उससे विविध प्रकार के रोगोत्पादक कीटाणु नष्ट होते हैं। प्राणियों के स्वास्थ्य में उससे लाभ होता है। तृतीय अंश पुण्य के रूप में परिणत होकर यज्ञ करने वाले के आत्मा में चीपक जाता है, जिससे उत्तम फल की प्राप्ति होती है।

पूजा, सङ्गतिकरण और दान–इन तीन अर्थों में यज् धातु प्रयुक्त है। उससे नङ् प्रत्यय करके यज्ञ शब्द निष्पन्न होता है। जिसमें अङ्गों सहित नारायण की उपासना हो, अच्छे सन्तों एवं विद्वानों के द्वारा सदुपदेश हो और जिसमें भोजनादि आवश्यक वस्तुओं का वितरण होता हो, उसे यज्ञ कहते हैं। अङ्गों सहित भगवान के उद्देश्य से द्रव्य का त्याग किया जाता है–'देवता उद्देश्येन द्रव्यत्यागो याग:' मीमांसा-शास्त्र कहता है।

यज्ञस्थल में हजारों लोग उपस्थित होते हैं, वे महात्माओं से सारगर्भित उत्तम उपदेश सुनकर अनादि-काल की दूषित वासनाओं को हटाकर पवित्र होते हैं। जीवों के कल्याण के लिए पाँच संस्कार आवश्यक है—दोनों भुजाओं में शंख-चक्र धारण करना, ललाट में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाना, उत्तम नाम रखना, मूल, द्वय और चरम मन्त्र ग्रहण करना और अपने को भगवान के चरणों में समर्पण कर देना। इन पञ्च संस्कारों में आत्मसमर्पण यज्ञ है। यह आत्म समर्पण सर्वश्रेष्ठ यज्ञ कहा गया है। जिन लोगों ने आत्म समर्पण यज्ञ किया वे सब भगवत्कृपा पात्र बनकर मोक्ष के भाजन बने हैं।

ताप: पुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रो यागस्तु पञ्चम: ।
अमी हि पञ्च संस्कारा: परमैकान्तिहेतव: ।।

यज्ञ की चर्चा करती हुई गीता कहती है कि यज्ञ सामग्रियों के साथ ही भगवान ने पूजा का सृजन किया है। गीता में यज्ञों द्वारा ही प्रजा की वृद्धि बतलायी गयी है।

सहयज्ञा: प्रजा: सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति: ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेव वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।

(गी०–३/१०)

यज्ञ पाँच प्रकार के बताये गये हैं—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ और भूतयज्ञ।

वेदों तथा ऋषि प्रणीत ग्रन्थों का स्वाध्याय करना ब्रह्मयज्ञ या ऋषियज्ञ कहा गया है। जिन पितरों से उत्पन्न होकर मानव पालित-पोषित होता है, उन मृत पितरों के लिए प्रतिदिन तर्पण करना पितृयज्ञ है। प्रतिदिन देवों का पूजन, तर्पण, हवन आदि कर्म देवयज्ञ है। अतिथियों की सेवा करना नृयज्ञ है। गौ, चिट्टी आदि के निमित्त बलि देना भूतयज्ञ कहा गया है। गृहस्थों को प्रतिदिन इन पञ्च यज्ञों को करना चाहिए। हमलोग यज्ञों द्वारा देवताओं की आराधना करते हैं। देवता समयानुकूल जलवर्षाकर हमलोगों को आहार देते हैं। इस तरह देवताओं के साथ पारस्परिक सहयोग से सृष्टि के सारे कार्य व्यवस्थित रूप से होते रहते हैं।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु व: ।
परस्परं भावयन्त: श्रेय: परमवाप्स्यथ ।।(गी०३/११)

यज्ञ से अवशिष्ट अन्न खाने से मानव में निर्मलता आती है। यज्ञ से बचा अन्न अमृत के समान होता है। इसलिए भगवान कृष्ण ने कहा है—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धन: ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्ग: समाचरेत् ।। (गी०३।९)

अत: आसक्ति रहित होकर यज्ञार्थ कर्म का पालन करें। *****

श्रीवैष्णव धर्म की परम्परा

श्रीवैष्णव धर्म नाम से ही ज्ञात होता है कि इस धर्म का सम्बन्ध सनातन विष्णु से है। विष्णु का अर्थ है–व्यापक। वे ही सर्वान्तर्यामी एवं सर्वेश्वर हैं। सनातन विष्णु जगत् के सृजन, पालन एवं संहारक शक्ति-सम्पन्न तथा मोक्ष प्रदाता हैं। वे वेदों एवं पुराणादि शास्त्रों में नारायण नाम से प्रसिद्ध हैं। महाप्रलय काल में एक नारायण ही व्यवस्थित रहते हैं। अन्य ब्रह्मा से कीटाणु पर्यन्त समस्त जीव और जड़ सूक्ष्म रूप में (नाम रूप से रहित होकर) नारायण में समाहित होकर रहते हैं। सृष्टि के पूर्व भगवान विष्णु सङ्कल्प लेते हैं। उनकी नाभि से ब्रह्मा का प्राकट्य होता है। भगवान नारायण उन्हें समस्त वेदों का ज्ञान कराकर सृष्टि विस्तार का भार देते हैं और अपने दिव्य आयुध शंख, चक्र से अङ्कितकर श्रीवैष्णव धर्म विस्तार का अधिकार प्रदान करते हैं।

सत्ययुग में कालक्रमवश जब हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु आदि दैत्यों द्वारा श्रीवैष्णव धर्म की क्षति पहुँचायी गयी, तब नृसिंह, वामन आदि रूप में अवतार लेकर भगवान ने हिरण्याक्ष आदि राक्षसों का वधकर श्रीवैष्णवधर्म की रक्षा की है।

त्रेता में रावणादि राक्षसों की दुष्टता से श्रीवैष्णव धर्म का ह्रास होने लगा तब देवताओं की प्रार्थना पर भगवान विष्णु अयोध्या में राजा दशरथ के पुत्र रूप में अवतरित हुए। जिनका नाम राम था। उन्होंने सनातन श्रीवैष्णवधर्म की परम्परा को नष्ट करने वाले रावणादि राक्षसों का संहार कर श्रीवैष्णव धर्म को पूर्ण रूप में प्रतिष्ठापित किया। भगवान श्रीराम से प्रेम करने वाले शबरी, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण आदि परम वैष्णव थे। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण आदि आर्ष ग्रन्थों के साङ्गोपाङ्ग अध्ययन से यह बात स्पष्ट है कि जिस श्रीवैष्णव धर्म के पालन से मानव त्रिविध ताप से मुक्त हो जाता है उस श्रीवैष्णव धर्म को ही भगवान श्रीराम ने मानव कल्याण के लिए सदुपदेश किया है।

द्वापर में ऋषि-मुनियों एवं राजाओं द्वारा श्रीवैष्णवधर्म का प्रचार-प्रसार होता रहा था। बीच में कंस, जरासन्धादि दुष्टों के द्वारा श्रीवैष्णव धर्म का ह्रास हुआ। सारी जनता दुष्ट प्रवृत्ति वाले कंसादि से विशेष कष्ट अनुभव कर रही थी। सर्वत्र त्राहि-त्राहि की ध्वनि गूँज रही थी जनता की आर्त्त पुकार को पृथ्वी देवी ने देवताओं तक पहुँचायी। ब्रह्मा आदि देवगण विशेष प्रार्थना कर भगवान विष्णु को प्रसन्न किए। भगवान विष्णु ने देवकी-वसुदेव के द्वारा कृष्ण रूप में प्रकट हो, नन्द-यशोदा के घर जाकर विशेष लीलायें की। उन्होंने श्रीवैष्णवधर्म के विरुद्ध आचरण करने वाले सारे कंसादि दुष्टों का नाशकर श्रीवैष्णव धर्म को प्रतिष्ठापित किया।

द्वापर में श्रीवैष्णवधर्म का स्वरूप प्रकाशित करने के लिए पराशर जी ने श्रीविष्णुपुराण की रचना की, वेदव्यास ने श्रीमद्भागवत रचकर विशुद्ध श्रीवैष्णव-धर्म का स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं द्वारा दर्शाया। श्रीमद्भागवत के एक मात्र आराध्य नारायण स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण हैं। सर्वत्र उन्हीं की स्तुति की गई है। अन्य किसी देवी देवताओं की स्तुति श्रीमद्भागवत में नहीं है, अन्य देवों की उपासना का फल अल्प और नश्वर बतलाया गया है। भगवान विष्णु की उपासना ऐहिक फल के साथ मोक्षप्रद होती है। अत एव इसका नाम ही श्रीमद्भागवत है। इसमें भगवान विष्णु के सभी अवतारों एवं उनके भक्त श्रीवैष्णव के दिव्य चरित्रों का वर्णन किया गया है।

द्वापर के अन्त में श्रीवैष्णवधर्म के विगड़ते हुए स्वरूप को देखकर ही भगवान श्रीकृष्ण ने युद्ध में प्रोत्साहित करने के व्याज से अर्जुन को निमित्त बनाकर श्रीमद्भागवतगीता में श्रीवैष्णवधर्म का उपदेश किया है। गीता विशुद्ध श्रीवैष्णवधर्म का प्रधान ग्रन्थ है। श्रीवैष्णव शुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न भगवान विष्णु की उपासना करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण विष्णु स्वरूप हैं। उनकी अनन्य उपासना की शिक्षा गीता देती है।

*****

कलियुग में श्रीवैष्णवधर्म की परम्परा

वैकुण्ठाधिपति भगवान श्रीमन्नारायण ने महालक्ष्मी से कहा कि लीलाविभूति में हम दोनों जाकर वैष्णवी दीक्षा का प्रचार प्रसार करेंगे तो कलि कलुसित मानव हमारे उपदेश को आत्म प्रशंसा समझकर स्वीकार नहीं करेंगे। अत: अन्य किसी को लीलाविभूति में भेजकर वैष्णवी दीक्षा का प्रचार करना चाहिए। श्रीलक्ष्मी जी भगवान के सेवा में सदा लगे रहने वाले नित्य जीव विष्वक्सेन जी को वैष्णवधर्म के प्रचार-प्रसार हेतु धरातल पर भेजा। उन्होंने शठकोप स्वामी को वैष्णवी दीक्षा देकर वैष्णवधर्म के प्रचार-प्रसार के लिए प्रेरित किया। इस तरह नारायण ने लक्ष्मी को, लक्ष्मी ने विष्वक्सेन जी को वैष्णवी दीक्षा दी। इस तरह पूर्ववर्ती आचार्यों ने उत्तरोत्तर आचार्यों को वैष्णवी दीक्षा देकर श्रीवैष्णवधर्म के प्रचार-प्रसार रूपी काम में प्रेरित किया। इसलिए कलियुग में श्रीवैष्णव धर्म की परम्परा इस प्रकार है—

१. नारायण, २. लक्ष्मीजी,

३. विष्वक्सेनजी, ४. शठकोपस्वामी,

५. नाथमुनिस्वामी, ६. श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी,

७. श्रीराममिश्र जी, ८. श्रीयामुनाचार्य जी,

९. श्रीमहापूर्ण (श्रीपराङ्कुशस्वामी),

१०. श्रीरामानुजाचार्य जी महाराज,

११. श्रीगोविन्दाचार्य जी, १२. श्रीपराशर भट्ट स्वामी,

१३. श्रीवेदान्ती स्वामी, १४. श्रीकलिवैरी स्वामी,

१५. श्रीकृष्णपाद स्वामी, १६. श्रीलोकाचार्य स्वामी,

१७. श्रीशैलपूर्णस्वामी, १८. श्रीवरवरमुनि स्वामी।

श्रीवरवरमुनि स्वामी ने सर्वत्र श्रीवैष्णव धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार के लिये अष्टगद्दी की स्थापना की थी। उन गद्दियों पर रहकर श्रीवैष्णवधर्म के प्रचार-प्रसार करने वाले आठ महान दिग्ज विद्वान् थे। उनमें तीन संन्यासी और पाँच गृहस्थ थे। पाँच गृहस्थ गद्दी के स्वाभियों में एक अण्णन स्वामी थे। वे वरवरमुनि के कृपापात्र थे। उत्तर भारत में गोवर्धन पर्वत पर अपनी कुटी बनाकर श्रीवैष्णवता के प्रचार के लिये श्रीशठकोप स्वामी रहते थे। पश्चात् उसी गोवर्धन में श्रीअण्णन स्वामी ने गोवर्धन पीठ बनाया। इसलिये उस पीठ को अण्णनपीठ कहते हैं। वही वर्तमान में गोवर्धन गद्दी है। उसी परम्परा में श्रीशेषाचार्य के शिष्य श्रीनिवासाचार्य गोवर्धन गद्दी के अधिकारी हुए। उनके शिष्य श्रीरङ्गदेशिक स्वामी हुए।

*****

किस दिशा में विवाह सम्भव है

१. शुक्र से सप्तमेश की जो दिशा हो उसी दिशा में प्राय: कन्या का घर होता है।

२. यदि सप्तम स्थान में ग्रह हों तो उस स्थान की राशि की जो दिशा हो अथवा सप्तम स्थान पर जिन ग्रहों की दृष्टि पड़ती हो उन ग्रहों की राशिस्थ दिशाओं में कन्या का घर होता है। यदि स्थिर राशि हो तो कन्या का घर वर के घर से विशेष दूर न होगा और यदि चर राशि हो तो वर के घर से कन्या का घर दूर होगा।

श्रीरङ्गदेशिक स्वामी तथा गोवर्धनपीठ

दक्षिण भारत के काञ्चीपुर प्रमण्डल में भूतपुरी के निकट अरहन गाँव में वाधुलवंशीय श्रीनिवासाचार्य जी निवास करते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम रङ्गनायिकी देवी था। श्रीनिवासाचार्य को अपनी धर्मपत्नी से एक पुत्र १८६६ संवत् कार्तिककृष्ण सप्तमी तुला संक्रान्ति के पुनर्वसु नक्षत्र में हुआ। जो रङ्गदेशिक नाम से प्रसिद्ध हुए। वे अष्टम वर्ष में उपनयन संस्कारपूर्वक वेदाध्ययन में प्रवृत्त हुए। वे कुछ काल में ही विद्वान बन गये।

वे एक दिन रात्रि में अकस्मात् स्वप्न देखने लगे कि एक भैसा पीछे से दौड़ रहा है। वे डरकर भागने लगे तब उस भैंसे ने उन्हें पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तीन दिशाओं में जाने से रोक दिया। जब वे उत्तर दिशा की ओर भागने लगे तब वह सामने से हट गया। प्रात: काल एक दैवज्ञ ने स्वप्न की बात सुनकर उनसे बताया कि आपका भाग्योदय उत्तर भारत में जाने से होगा। तब आपने एक सन्त के साथ उत्तर भारत की यात्रा किया। आप वृन्दावन गोवर्द्धन पहुँच गये। कुछ सन्तों के सहयोग से गोवर्द्धन पीठाधीश श्रीनिवासाचार्य जी से आप दीक्षित हुये। वे वृद्ध होने पर श्रीरङ्गदेशिक स्वामी को अपना उत्तराधिकारी बनाकर स्थिरभाव से भगवान का भजन करने लगे। श्रीनिवासाचार्य जी के मृत्यु के बाद श्रीरङ्गदेशिकस्वामी गोवर्धनपीठ के सेवा सम्बन्धि समस्त कार्यों को करने लगे। कुछ महन्तों ने सेठ लक्ष्मीचन्द के परिवारों को रङ्गदेशिक स्वामी से दीक्षित करा दिया। लक्ष्मीचन्द सेठ के परिवारों में श्रीराधाकृष्ण और गोविन्ददास ये दोनों स्वामी जी से शिष्य हो चूके थे। श्रीस्वामी जी ने सेठ राधाकृष्ण को मुमुक्षुपड़ी आदि ग्रन्थों को अध्ययन कराकर आत्मस्वरूप का ज्ञान कराया। दक्षिण देश के दिव्य देशों की कथा सुनकर सेठ राधाकृष्ण ने एक दिन रङ्गदेशिक स्वामी से प्रार्थना की कि मेरी इच्छा होती है कि वृन्दावन में गोदा रङ्गनाथ की प्रतिष्ठा हो। रङ्गदेशिकस्वामी ने सेठ राधाकृष्ण को दिव्य देश काञ्ची वरदराज का नक्सा दिखाया और कहा कि इसी आकार-प्रकार का गोपुर आदि सहित एक विशाल मन्दिर बनवाना होगा।

गोदा देवी दक्षिण में श्रीविष्णुचित स्वामी द्वारा सिञ्चित तुलसी की वाटिका से प्रकट हुई थी। रङ्गनाथ जी ने गोदा को पत्नी रूप में स्वीकार किया था। उनका वृन्दावन वास करने का मनोरथ था। श्रीरङ्गदेशिक स्वामी ने श्रीरङ्गम् जाकर श्रीगोदा सहित रङ्गनाथ जी से प्रार्थना की। भगवान वृन्दावन आने के लिए स्वीकार कर लिये। श्रीरङ्गम् से ही मन्दिर, मूर्ति, वाहन आदि का निर्माणार्थ कुशल कारीगर आए। श्रीराधाकृष्ण सेठ ने १९०१ सम्वत् में वृन्दावन में श्रीरङ्ग मन्दिर का शिलान्यास करवाया। १९०६ में गोपुर आदि सहित श्रीरङ्गनाथ जी का मन्दिर बन गया। गोदा रङ्गनाथ की मूर्ति भी तैयार हो गयी। सेठ लक्ष्मीचन्द श्रीराधाकृष्ण और श्रीगोविन्ददास ये तीन भाईयों ने मन्दिर का निर्माण श्रीगोदा रङ्गनाथ की प्रतिष्ठा वृन्दावन मन्दिर में विधिवत् करायी। श्रीरङ्गदेशिक स्वामी के पुत्र का नाम श्रीनिवासाचार्य था। श्रीरङ्गदेशिक स्वामी ने षोडश वर्षीय अपने पुत्र को श्रीरङ्गमन्दिर का उत्तराधिकारी बना दिया।

श्रीरङ्गदेशिक स्वामी ने अपने अपूर्व वैदुष्य तथा भगवत्कृपा से हजारों सुयोग्य शिष्य बनाया। सबों को वैष्णवी दीक्षा देकर श्रीवैष्णवधर्म के रहस्य का बोध कराया, वे भारत के सभी क्षेत्रों में विशेष उत्तर भारत में यत्र-तत्र मन्दिर बनाकर श्रीवैष्णवधर्म

के प्रचार-प्रसार करने लगे। उन्हीं शिष्यों में एक राजेन्द्राचारी रङ्गदेशिक स्वामी के कृपापात्र थे। जो वृन्दावन के उस स्थान पर नृसिंह मन्त्र के अनुष्ठान से सिद्धि प्राप्त की थी, जहाँ मथुरा की यज्ञ पत्नियाँ भगवान श्रीकृष्ण और बलदेव जी को दही भात खिलायी थीं। जो स्थल आज भतरौढ़ नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ पर भगवान का मन्दिर बना हुआ है। वे स्वामी राजेन्द्राचार्यजी महाराज बड़े सिद्ध पुरुष थे; उन्होंने बिहार के पटना जिला अन्तर्गत तरेतपाली में एक भगवान राघवेन्द्र का मन्दिर बनवाया, वहाँ से सर्वत्र श्रीवैष्णवधर्म के दिव्य ज्ञान धारा प्रवाहित हुई। उनके अनेक सुयोग्य शिष्य थे जिनमें तीन प्रधान थे। श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य जी, श्रीस्वामी वासुदेवाचार्य जी एवं श्रीस्वामी माधवाचार्य जी। इन तीनों ने गुरु आज्ञा के अनुसार सर्वत्र श्रीवैष्णवधर्म का प्रचार-प्रसार किया, जिनकी कृपा से आज लाखों ऊर्ध्वपुण्ड्र चन्दन चर्चित ललाट वाले श्रीवैष्णवों का दर्शन हो रहा है।

*****

समय-शुद्धि

गुरु-शुक्र के अस्त, बाल्य तथा वृद्ध अवस्था में विवाहादि माङ्गलिक कर्म नहीं करना चाहिए; क्योंकि उन अवस्थाओं में विवाहादि कर्म करने से हानि होती है।

गुरोस्ते पतिं हन्याच्छुक्रास्ते चैव कन्यकाम्।

बालभावे स्त्रियं हन्याद्वृद्धभावे नरं तथा।

तस्माद्बाले च वृद्धे च विवाहं नैव कारयेत्।।

विवाहो व्रतबन्धो वा यात्रा वा गृहकर्म च।

गुरावस्तमिते शुक्रे ध्रुवं मृत्युं विनिर्देशेत्।। (मुहूर्तचिन्तामणि पीयूषधारा)

वैखाख कृष्ण अमावस्या सोमवार तदनुसार ५/५/२००८ से आषाढ़ कृष्ण अमावस्या गुरुवार ३/६/२००८ तक शुक्रास्त रहेगा। अस्त से पूर्व तीन दिन वार्द्धक्यदोष और उदय से तीन दिन बाल्य दोष रहता है।

जीर्ण गृहप्रवेश मुहूर्त्त

१. श्रावण कृष्ण एकादशी सोमवार २८/७/२००८ को दिन में १/३५ से ३/५० तक।

२. श्रावण शुक्ल षष्ठी गुरुवार ७/८/२००८ को प्रात: काल ६/१५ से ८/२६ तक पुन: १२/५६ से ३/१२ तक।

३. श्रावण शुक्ल त्रयोदशी गुरुवार १४/८/२००८ को दिन में १२/३० से २/४५ तक।

गृहारम्भ मुहूर्त्त

१. श्रावण शुक्ल त्रयोदशी गुरुवार १४/८/२००८ को दिन में १२/३० से २/४५ तक।

२. श्रावण शुक्ल पूर्णिमा शनिवार १६/८/२००८ को दिन में १/५९ से २/३८ तक।

*****

प्रवेशिका

श्रीमद्भगवद्गीता समस्त वेदों का सार है। यह साक्षात् परमात्मा की दिव्यवाणी है। इसमें सारे शास्त्रों का सार भरा है। इसीलिए गीता सर्वशास्त्रमयी कही गयी है। इसमें भगवान के अव्यक्तरूप से विश्वरूप तक की झाँकी मिलती है। यह परमात्मा के अनन्त कल्याणमय गुणों तथा दिव्य विभूतियों का दिग्दर्शन कराती है। भगवान श्रीकृष्ण ने उपनिषद् रूप गौ से अर्जुन को बछड़ा बनाकर गीता रूप अमृतमय दूध को निकाला है। मानव धर्म के मूल तत्त्वों को समझाने वाला गीता के समान विश्व में दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं हुआ। यह एक शरीररूप पिण्ड में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की चीजों का दर्शन करा देती है। मानव की सारी समस्याओं का समाधान गीता में मिल जाता है। संसार के विभिन्न कष्टों से पीड़ित मानव को आनन्दमय सागर से मिला देने की सामर्थ्य एकमात्र गीता में है। यह गीता श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद रूप में है। भगवान ने कहा है कि मेरा और अर्जुन के संवाद रूप गीता का जो अध्ययन करता है, वह ज्ञानयज्ञ से मेरी उपासना करता है। भगवान ने यह भी कहा है कि जो व्यक्ति भक्तों के बीच गीता का प्रवचन करता है, वह निर्मल भक्ति से मुझे प्राप्त कर लेता है और उसके समान संसार में मेरा दूसरा भक्त नहीं है।

वृन्दावन यज्ञ का आँखों देखा हाल

भगवान श्रीराम की जन्म भूमि अयोध्या में सन् २००६ में सरयू नदी की गोद में यज्ञ सम्पन्न होते ही भक्तों के मन में भाव आ रहा था कि अगला यज्ञ कृष्ण की दिव्यलीला भूमि वृन्दावन में हो। ०४ सितम्बर ०७ को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव के सुअवसर पर हुलासगंज स्थान में श्रीनरेन्द्र साधु जी (बिहटा) एवं अन्य भक्तों के बीच श्रीधाम वृन्दावन में यज्ञ करने की चर्चा प्रारम्भ हुई; परन्तु समस्या हुई कि पूज्यपाद स्वामी जी महाराज के श्री चरणों में निवेदन कौन करे? अन्त में निर्णय हुआ कि नरेन्द्र जी, परशुराम जी आदि जाकर आचार्यश्री से निवेदन करें, तत्पश्चात् कुछ भक्तों के साथ दोनों लोग श्रीस्वामी जी महाराज के श्री चरणों में निवेदन करने के लिए प्रस्तुत हुए और अपनी अभिलाषा इन लोगों ने श्रीस्वामी जी महाराज के समक्ष निवेदित किया। स्वामी जी महाराज का स्वभाव त्वरित उत्तर देने के लिए प्रसिद्ध है; परन्तु स्वभाव के विपरीत आचार्य श्री कुछ क्षण तक मौन हो गए, ऐसी स्थिति में सभी भक्तों का मुँह शुष्क होने लगा। पुनः मौन तोड़ते हुए श्रीस्वामीजी महाराज ने कहा— 'अच्छा जी, आपलोगों की इच्छा है तो जाइये जगह देखकर आइये; ऐसे हमने अभी भगवान से पूछा नहीं है, लेकिन जाइये'। यहीं से होता है वृन्दावन यज्ञ का श्रीगणेश।

स्वामी जी महाराज एवं छोटे सरकार भक्तों के साथ २६ नवम्बर २००७ को वृन्दावन के लिए रवाना हुए। वहाँ पहुँचकर सभी विकल्प देखने के बाद, तटिया स्थान से देवराहा बाबा आश्रम में जाने के मार्ग से पूरब यमुना नदी से दक्षिण, रामायणी जी के गेहूँ के खेत में यज्ञ करने का निर्णय लिया गया। जमीन का पट्टा किया गया। २९ नवम्बर को हनुमान जी का ध्वजारोपण हुआ। उसी दिन जमीन नाप-जोखकर, स्वामी जी की कुटिया, भगवान का मन्दिर, सन्त-निवास, भण्डार, रसोईघर, दैनिक कथा पण्डाल, यज्ञशाला, बड़ा प्रवचन पण्डाल, कुँआ, एक शौचालय, चापाकल एवं अन्य निर्माण का प्रारूप तैयार किया गया। दूसरे दिन एक कमरा बनाया गया एवं एक सन्त

को वहीं रहने का आदेश दे दिया गया।

बाद में सुना कि यह वही जगह है जहाँ गोपियों को आत्मतत्त्व एवं ब्रह्मतत्त्व का पाठ पढ़ाने वाले उद्धवजी को अपनी ज्ञान गुदड़ी उतार देनी पड़ी थी और प्रेम रंग में रंग जाना पड़ा था।

दिसम्बर के प्रथम सप्ताह से ही शुरु हुआ संसाधनों के जुटाने का सङ्कल्प। बिहटा क्षेत्र से २१६५ बाँस की व्यवस्था की गई। नरेन्द्र साधू अपने दल के साथ ट्रक ले आए। मुजफ़्फ़रपुर से विशेषज्ञ मिस्त्री आए। निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। प्रचार-प्रसार एवं अर्थसंग्रह में लग गए भक्तगण।

१० फरवरी २००८ को हुलासगंज स्थान पर १५० मन चावल एवं अन्य सामान बरतन-बासन, धोतियाँ आदि ट्रक पर लाद दिया गया। पुन: गया में ५०मन चावल और आवश्यक सामान गया बाजार से खरीदकर भरा ट्रक भण्डारी जी के नेतृत्व में रवाना हुआ।

१६ फरवरी को स्वामी जी महाराज 'जय-विजय' एवं अन्य भक्तों तथा चार रसोइया के साथ यज्ञ के लिए यात्रा प्रारम्भ कर दिए। दूसरे दिन पहुँचने के बाद से सारी व्यवस्था धीरे-धीरे शुरु होने लगी। छोटे स्वामी जी महाराज भक्तों के साथ २५ फरवरी को पधारे।

भक्तों का आगमन—स्वामी जी महाराज के पधारने के साथ ही भक्तों के आने का सिलसिला शुरु हो गया। २२ फरवरी से प्रारम्भ होने वाले अखण्ड संकीर्तन एवं भागवत कथा सुनने के लिए २०-२१ को ही एक दल आ गया। २८/२ से होने वाली हरिवंश कथा में शामिल होने के लिए करीब १०० भक्त २७/२ को ही आ गए। ९/३ को जलाहरण की शोभायात्रा एवं यज्ञ हेतु लोगों का ताँता लगना प्ररम्भ हो गया था। करीब पाँच से छ: हजार के बीच भक्त आ गए।

कोई दिल्ली से आए, तो कोई मुम्बई से। बिहार, बंगाल, उड़िसा, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं दक्षिण भारत से भी भक्त लोग यज्ञ में शामिल हुए।

कोई सम्बन्ध आने के लिए बाकी न रहा। ससुराल के 'स' से प्रारम्भ होने वाले सभी सम्बन्ध, सास-श्वसुर, शाली-शाला, सरहज, साढु-सढुआइन, भाई-बहन, बेटा-बेटी, पोता-पोती, मौसा-मौसी, गुरु-चेला; यहाँ तक कि चार-चार सहोदर भाई भी दिखाई दिए। पति-पत्नी की कितनी जोड़ियाँ आईं उसका क्या पूछना। हर पेशे के लोग-वकील, डाक्टर, इन्जिनियर, पुलिस, व्यवसायी, शिक्षक, विद्यार्थी, आचार्य-प्राचार्य, साधू-सन्त महन्थ, भक्त राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार के भी अधिकारी दिखाई दिए। साथ ही साथ कृष्ण भक्ति में सराबोर कई विदेशी भी यज्ञ भगवान की परिक्रमा करते दिखाई दिए।

यज्ञशाला एवं अन्य निर्माण— २४ फुट का वर्गाकार, २५ फुट ऊँचा, तीन तल्ला निर्माण, उसके ऊपर एक छोटा सा मन्दिर और उस पर एक नहीं कई रंग विरंगे इन्द्र ध्वज फहरा रहे थे। आधार २ फुट ऊँचा था और उस पर डेढ-दो फीट ऊँची ६ वेदियाँ, बीच में भगवान की वेदी एवं वास्तुशास्त्र के अनुसार नवग्रह, योगिनी, षोडश मात्रिका आदि। चारों ओर दीवार पर बाँस की विभिन्न बनावट-धनुषबाण लिए भगवान राम, राधा के संग वाँसुरी बजाते कृष्ण, गदा के साथ हनुमान हैं तो कहीं मोर पंख विखेरते नृत्य मुद्रा में श्रीकृष्ण। यथोचित हवन कुण्ड बने थे। ऊपर से बिजली के लाल ट्वींकलींग बल्ब देखते बनता था। पुरुष एवं महिला के लिए एक ही आठ फीट चौडा परिक्रमा मार्ग बना था। यज्ञशाला के चारों कोणों पर एक-एक कुटिया अखण्ड कीर्तन, भागवत सप्ताह, वाल्मीकि नवाह एवं हरिवंश कथा हेतु निर्माण

किया गया था।

भगवान का आकर्षक मन्दिर, स्वामी जी महाराज की कुटिया, पाकशाला, सन्तनिवास काफी सुन्दर ढंग से बना था। लगता था कि ये सब स्थायी निर्माण हैं।

अनुष्ठान—भिन्न-भिन्न अनुष्ठानों का कार्यक्रम इस प्रकार था—

२२ फरवरी २००८ से १४ मार्च २००८ तक
अखण्ड हरिनाम संकीर्तन

२२ फरवरी २००८ से २८ फरवरी २००८ तक
श्रीमद्भागवत कथा सप्ताह

२८ फरवरी २००८ से ०७ मार्च २००८ तक
वाल्मीकि रामायण नवाह एवं हरिवंश कथा

०८ मार्च २००८ विश्राम

०९ मार्च २००८ नगर शोभा यात्रा एवं जलाहरण

१० मार्च से १४ मार्च २००८ तक
मुख्य यज्ञ, हवनादि, प्रवचन, रात्रि में रासलीला।

अखण्ड संकीर्तन—विधिवत् पूजन एवं कलश स्थापन के बाद, तैत्तिरीय उपनिषद् के तारक मन्त्र—**हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।।** का अखण्ड संकीर्तन २२ फरवरी के करीब ११ बजे शुरु हुआ। भक्तों की कई टोलियाँ बनीं और अखण्ड संकीर्तन चलता रहा। महिलाओं की भी टीम थी। रात में आवाज शहर के दूर इलाके में भी सुनाई पड़ती थी। कुछ दल तो इतने प्रेम-मग्न होकर कीर्तन करते थे मानों भगवान राम और कृष्ण दोनों ही एक साथ अपना नाम-कीर्तन सुनने आ गए हों।

भागवत सप्ताह एवं स्वामी जी का प्रवचन—निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार भागवत सप्ताह का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ। हुलासगंज स्थान से आए विद्वान पण्डित पूर्वाह्न एवं अपराह्न में भागवत परायण पाठ करते थे। सायं चार बजे स्वामी जी महाराज के मुखारविन्द से कथा होती थी। साप्ताहिक कार्यक्रम के अनुसार कथा होती रही। कथा का केन्द्र विन्दु कृष्णलीला ही रहता था। सप्ताह के बाद कुछ भक्तों के अनुरोध पर स्वामी जी महाराज ने घोषणा की कि आगे से वाल्मीकि रामायण के आधार पर प्रवचन होगा। स्वामी जी महाराज कृष्णलीला में ऐसा गोता लगा रहे थे कि वे निकले ही नहीं। वृन्दावन में कृष्ण लीला की ही ज्यादा सार्थकता बताते हुए उन्होंने उसे ही जारी रखा।

भगवान का जन्म, पूतना-वध, गर्ग-संहिता के अनुसार कृष्ण की छः माह की अवस्था में ही राधा जी के साथ विवाह, नामकरण संस्कार, बाललीला, माखन चोरी, ऊखल से बाँधा जाना, यमलार्जुन उद्धार, ब्रह्माजी का मोहभंग, ग्वालवालों को कालिय नाग के विष से बचाना, पुनः कालिय पर कृपा, गौओं और ग्वालवालों को दावाग्नि से बचाना, वेणुगीत, चीरहरण, यज्ञ पत्नियों–चौबाइन पर कृपा, इन्द्र के कोप से व्रजवासियों को बचाना, शङ्कर जी का गोपी बनना एवं भगवान का गोपियों के साथ रासलीला प्रकरण चलता रहा।

कथा के साथ-साथ जीवनोपयोगी उपदेशात्मक बातें भी होती रहीं—

* नारी से पुरुषों का कल्याण होता है, पर पुरुषों से नारियों के कल्याण के उदाहरण नहीं मिलते हैं।
* पति की सेवा ही पत्नी का सबसे बड़ा धर्म है–चाहे पति जड़ हो, धनहीन हो, विचारहीन हो, रोगी हो।
* काम से क्रोध होता है। काम, क्रोध और लोभ–ये तीनों पाप के कारण और नरक के द्वार हैं।
* भगवत् प्राप्ति के तीन नियम–श्रद्धावान बने, तत्पर रहें और इन्द्रियों को संयमित रखें।
* गोपियाँ सिर्फ रूप की थीं, वे न पुरुष थे न

स्त्री, न नपुंसक थे। सीतारूप एक सौ प्रकार की गोपियाँ थीं।

* जीव का ब्रह्म के साथ नौ प्रकार के सम्बन्ध हैं। जीव कहता है एक सम्बन्ध पति-पत्नी से तो निर्बहण हो जाता है, आपसे तो नौ सम्बन्ध हैं। आप मुझे छोड़ कैसे देंगे?
* गुरु के वचन सुनने लायक, मनन करने लायक और धारण करने लायक होता है।
* साष्टाङ्ग प्रणाम करने से आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है।
* जीव के अहङ्कार को भगवान तोड़ ही देते हैं।

आगे केशी का उद्धार, अक्रूर जी की यात्रा, कृष्ण-बलराम द्वारा गुरुदक्षिणा में गुरु के मृतपुत्र को यमलोक से वापस लाकर देना, मथुरा आगमन, कुब्जा पर कृपा, कंस का उद्धार प्रकरण चला। दोनों भाइयों का यज्ञोपवित संस्कार, जरासन्ध से युद्ध, द्वारकापुरी का निर्माण, कालयवन का भस्म होना, मुचुकन्द कथा, रुक्मिणी हरण, कृष्ण-रुक्मिणी विवाह, कृष्ण के साथ अन्य सोलह हजार एक सौ राज कन्याओं का विवाह, देवर्षि, नारद का भगवान की दिनचर्या देखना, शिशुपाल का उद्धार, कौरव-पाण्डव युद्ध की तैयारी, दुर्योधन-अर्जुन का कृष्ण के पास जाना, युद्ध में अर्जुन के रथ का बागडोर संभालने की स्वीकृति, अर्जुन के माध्यम से जीव को गीता का उपदेश आदि।

बिहार से गए भक्तों के अलावा स्थानीय सन्त महात्मा भी प्रवचन सुनने आते थे। दिन में आस-पास के मन्दिरों में जाने के पहले ही आपस में भक्त कहा करते थे कि भाई किसी हालत में स्वामी जी महाराज की कथा नहीं छुटनी चाहिये।

वाल्मीकि रामायण एवं हरिवंश कथा—निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार दोनों अनुष्ठान शुरु हुए। दोनों के लिए विद्वान पण्डित हुलासगंज स्थान से गए थे। हरिवंश कथा के विशेषज्ञ पण्डित ने सोलह जोड़ियों को सुबह-शाम परायण सुनाया। लोगों को आशङ्का थी कि इतनी दूरी वृन्दावन में कौन आयेगा हरिवंश कथा सुनने? लेकिन आशङ्का निर्मूल सिद्ध हुई। मेरी जानकारी में अभी तक की कथा में सबसे अधिक जोड़ी यहीं शामिल हुए। नित्य परायण के बाद ये स्वामी जी के पास साष्टाङ्ग करते थे। शाम में आरती करते थे। कैसा सुन्दर दृश्य लगता था। स्वामी जी महाराज की अन्तरात्मा से निश्चय ही आवाज आती होगी–पुत्रवान् भव! पुत्रवान् भव!!

विज्ञान की पहुँच के ऊपर आध्यात्म और आस्था का यह विषय है। आस्था हो भी क्यों नहीं? अपने कानों से सुनी हुई बात है—अयोध्या यज्ञ के कुछ वर्ष पहले भोजपुर में हरिवंश कथा हुई थी। कथा से लाभान्वित भक्त अयोध्या यज्ञ में आए हुए थे। कथाकार विशेषज्ञ पण्डित से उनकी बातें हो रही थीं। पण्डित जी ने पूछा–क्या समाचार है हरिवंश कथा सुनने वालों का? भक्त ने तुरन्त जवाब दिया–जी हाँ सरकार; ग्यारह में से नौ को सन्तान लाभ हुआ है, सरकार!!

भगवान से हम सब लोग प्रार्थना करें कि इन सोलहों की मनोकामना पूरी हो।

नगर शोभा-यात्रा एवं जलाहरण—०९ मार्च को सुबह से तैयारी प्रारम्भ हुई। पहले से ही २५६ कलश मँगा लिए गए थे एवं पीले रंग से रंगे एवं स्वस्तिक चिह्न युक्त थे। ५१ रुपये की साङ्केतिक राशि लेकर कलश बाँटे गए। बाजा बजना प्रारम्भ हुआ। पुरुष पीली धोती में और महिलाये रंग-विरंगे साड़ियाँ पहने थीं। भक्तों के हाथ में झण्डे थे। रथ सजा। छोटे सरकार सवार हुए। स्थान की मार्शल गाड़ी पर विद्वान् पण्डित बैठे। छोटी गाड़ियों में सन्त महात्मा थे। यज्ञस्थल पर ही यज्ञ भगवान एवं स्वामी जी महाराज की जय-जयकार हुई।

पंक्तिबद्ध होकर जलयात्रा शुरु हुई। यज्ञस्थल से धोवी घाट, रंगमन्दिर मार्ग-नगरपालिका चौराहा, आंशिक रूप से परिक्रमा मार्ग होते हुए लोग आगे बढ़े। पूरे मार्ग पुरुषसूक्त, श्रीसूक्त, विष्णुसहस्रनाम एवं अन्य दिव्य प्रबन्धों के पाठ होते रहे। अर्चागुणगान की ये पंक्तियाँ याद आयी—**'आगे चतुर वेद पाठक गण, पाछे प्रबन्ध सुरस ध्वनि न्यारी। देखन चलिए रंगवर की सवारी'**। चौक चौराहों पर रंग-अवीर उड़ते रहे। लोग गले से गले मिलते रहे। 'शोभा वरनि न जाई' कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस तरह लोग आए यमुना किनारे केशीघाट। यह वहीं घाट है जहाँ कंस ने केशी नामक दैत्य को छद्म वेश धारी घोड़ा बनाकर भेजा था कृष्ण को मारने हेतु। भगवान समझ गए थे एवं उन्होंने घोड़े के मुँह में अपना हाथ डालकर उसका श्वास अवरुद्ध कर दिया था जिससे उसकी जान चली गई थी। इसीलिए भगवान केशीनिसूदन भी कहलाते हैं।

घाट पर यमुना जी की विधिवत् पूजा के बाद जल संग्रह किया गया। सभी लोगों ने मन्त्रोच्चारण के साथ कलश में जल लिया। जय-जयकार की ध्वनि गुँजती रही। रंग अबीर उड़ता रहा, वेद मन्त्र पाठ होता रहा। किनारे पर मृतिका हरण हुआ। लोग वापस लौटे, यज्ञशाला की परिक्रमा कर जल स्थापित किया गया। थोड़ी कमी रही कि गाड़ियों को फूलों से सजावट यज्ञस्थल पर न होकर बीच मार्ग में हुई।

मुख्य यज्ञ—पञ्च दिवसीय श्रीलक्ष्मी नारायण महायज्ञ १० मार्च से शुरु हुआ। सुबह में ही आचार्य, उपाचार्य, ब्रह्मा, उद्‌गाता, होता, पाठक एवं यजमान के साथ करीब पच्चास की संख्या-यज्ञशाला पर पधारने लगे और इसी के साथ मुख्य यज्ञ का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। नवीन पीताम्बर वस्त्रों द्वारा विद्वान पण्डितों का वरणकर, विधिवत् गणेश, नवग्रह, षोडशमात्रिका, योगिनी, छत्रपाल, वास्तुवेदी एवं मुख्य वेदी पर यज्ञ भगवान की पूजा हुई। अरणि मन्थन से अग्नि उत्पन्न की गई। वेद मन्त्रोच्चारण होते रहा। अग्नि तैयार हो जाने पर आहुतियाँ पड़ने लगी। १६ मन काला तील, ८ मन चावल, ४ मन जौ, २ मन गुड़, अनुकुल घी एवं सुगन्धित द्रव्य से हवन सामग्री तैयार की गई थी, जिसे बराबर-बराबर बाँटकर पाँच दिनों में आहुतियाँ दी गई। सुबह-शाम दोनों बेला आहुतियाँ पड़ती थी। मन्त्रोच्चारण से सम्पूर्ण क्षेत्र की समाँ ही बदल चुकी थी। नौ कुण्ड में प्रज्वलित अग्नि की लपटें दर्शाती थी कि यज्ञ भगवान प्रसन्न हैं। लगता था सारे विरोधी तत्त्व दूर हो चुके हैं और साक्षात् विष्णु भगवान अग्नि के माध्यम से आहुतियाँ ले रहे हैं। छः जोड़े यजमान हवन सामग्री एवं अन्य खर्च का दायित्व लेकर कुण्ड पर बैठे थे। प्रतिदिन आहुति के पश्चात् स्तुति-आरती-प्रसाद वितरण होता था।

अन्तिम दिन, विद्वान पण्डित यजमान सबेरे से ही आहुति देने में लगे रहे। हब्बीश बना। पूर्णाहुति के बाद हब्बीश बँटा। ऐसा दृश्य-मानों यज्ञ भगवान मनोकामना पूर्ण करने हेतु प्रसाद बाँट रहे हों। आपा-धापी-'थौड़ा हमें भी दीजिए, थोड़ा हमें भी दीजिए'-काफी देर तक चलता रहा।

अन्त में पूर्व घोषणा के अनुसार दिल्ली से आए एक दाता भक्त के द्वारा विद्वान पण्डितों को दक्षिणा दी गई सब लोग प्रसन्न थे।

तदियाराधन—११ मार्च वृन्दावन के संस्कृत विद्यालय एवं महाविद्यालय के करीब २०० शिक्षक एवं ६०० विद्यार्थियों को सम्मानित करने का कार्यक्रम था। भोजनोपरान्त प्रत्येक शिक्षक को वस्त्र एवं एक सौ रुपये तथा छात्रों को पच्चास रुपये दक्षिणा दी गई।

१२ मार्च को स्थानीय मन्दिरों के महन्तों एवं सन्तों का निमन्त्रण था। वे करीब २०० की संख्या में थे। भोजन के बाद वस्त्र एवं प्रति व्यक्ति दो सौ रुपये की राशि से उनकी विदाई की गई।

१३ मार्च को स्थानीय साधू-सन्तों के लिए झारा भण्डारा का आयोजन था। झारा का तात्पर्य होता है सरदारा यानी सबका आमन्त्रण। करीब तीन हजार लोगों की व्यवस्था की गई थी। इन तीनों दिन आमन्त्रित जनों को पुड़ी, खस्ता कचोड़ी, लड्डू, पन्तुआ और साग खिलाया गया। प्रति व्यक्ति पचास रुपये की राशि से इन्हें सम्मानित किया गया। लोग गद्‌गद थे और जय-जयकार करते हुए विदा हुए।

१४ मार्च को सार्वजनिक भण्डारा था। यज्ञ की पूर्णाहुति के बाद जो भी आए सबको प्रेम से पूड़ी साग और लड्डू का प्रसाद पवाया गया। भोजन के बाद से ही लड्डू का प्रसाद घर लाने के लिए एवं मठ मन्दिरों में बाँटने हेतु मिलने लगा। प्रसाद १४, १५, १६ तारीख तक बँटता रहा।

बालक स्वामी—गोवर्द्धन पीठ के पीठाधीश अनन्तश्री विभूषित श्रीबालक स्वामी जी के दर्शन हेतु अपने स्वामी जी महाराज रंग मन्दिर गए। यज्ञ की चर्चा के बाद उन्होंने यज्ञ में आए भक्तों को आशीर्वाद देने के लिए यज्ञ स्थल पर आने का अनुरोध किया गया। बालक स्वामी जी के कुछ बड़े कड़े नियम हैं—भगवान के विग्रह को यमुना जल से स्नान कराने के अलावे वे मन्दिर के मुख्य द्वार से बाहर कभी जाते ही नहीं है। फिर भी अपने स्वामी जी के आग्रह पर उन्होंने आधे घण्टे का समय दिया। समय निर्धारित किया गया–१२ मार्च चार बजे दिन।

समय पर दोनों स्वामी जी वाहनों के साथ आगवानी हेतु रंगमन्दिर गए। जय-जयकार के साथ बालक स्वामी जी को मुख्य मार्ग तक लाया गया। वहाँ हजारों की संख्या में लोग उनके स्वागत में खड़े थे। आम्र पल्लव सहित जल भरा कलश लिए पंक्तिवद्ध पीले वस्त्र में सैकड़ों पण्डित मन्त्रोच्चारण करते आगे बढ़े। पीछे से बालक स्वामी जी की गाड़ी चली। लोग झण्डा-पताका लिए जय-जयकार कर रहे थे। आसमान गुँज रहा था। इस तरह लोग मुख्य पण्डाल तक आए। मञ्चपर बालक स्वामी जी आसीन हुए। स्वामी जी महाराज, छोटे सरकार तथा अन्य गणमान्य लोग एवं विद्वान पण्डित मञ्च पर उपस्थित थे।

षोडशोपचार 'ॐ सहस्त्रशीर्षा पुरुषः............' से प्रारम्भ कर 'ॐ यज्ञेन यज्ञ मय..........' तक पुरुष सुक्त से उनकी विधिवत् पूजा अर्चना की गई। बालक स्वामी जी ने स्वामी जी महाराज एवं छोटे स्वामी जी महाराज को पञ्चमाल वस्त्र, चन्दन आदि से सम्मानित किया।

मञ्चासीन बालक स्वामी के बगल में दायीं तरफ खड़े स्वेताम्बर धारी दोनों स्वामी जी, अन्य पण्डित और पूरा पण्डाल १५० × १०० फुट उर्ध्वपुण्ड्रधारी वैष्णव भक्तों से खचाखच भरा था। कुछ लोग बाहर भी थे। लगभग पाँच हजार लोग आशीर्वचनों की प्रतीक्षा में थे। बीच-बीच में जयकार की ध्वनि से आसमान गुञ्जायमान हो रहा था। मञ्चासीन बालक स्वामी एवं स्वेताम्बर धारी दोनों स्वामी जी को देखने से लगता था मानों गुरु वशिष्ठ के आश्रम में राम-लक्ष्मण खड़े हैं। अब बारी आई बालक स्वामी जी के दिव्य उद्‌बोधन की। जिसका कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है—

— श्री अलिमानुष स्तवः के ४९वें श्लोक 'गोवर्द्धनो गिरिवरो.....भवच्चरण चारजुषः प्रदेशो' को उद्धृत करते हुए बालक स्वामी ने भी बतलाया कि भगवान के चरण स्पर्श से पवित्र गिरिराज गोवर्द्धन, यमुना, वृन्दावन, मथुरा–ये आज पुण्यात्मा भाग्यवान जनों को ही दर्शन के

लिए सुलभ होते हैं (स्वामी जी महाराज ने यज्ञ स्थान पर हनुमान जी का ध्वजारोपण करने के बाद लौटते समय रेलयात्रा में भक्तों के बीच इस श्लोक की व्याख्या की थी एवं यज्ञ के आम नोटिस में यह श्लोक उद्धृत है)।

— अगर मैं अपना नियम न भङ्ग किया होता तो इतने बड़े वैष्णवों के समागम से वंचित रह जाता।

— दक्षिण भारत से सहचरों के साथ आलवार भगवान की लीला भूमि पर आए थे। कुछ दिन के बाद सहचरों को चला देने पर वे इस भाव से यहाँ की भूमि पर लोट-पोट करने लगे कि श्रीकृष्ण ने यहाँ लीला की है और उनके चरण के स्पर्श से यह भूमि पवित्र है।

— यमुना की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बतलाया कि कंस के किला के बगल से गुजरती हुई यमुना ने भयरहित होकर भगवान को मथुरा से गोकुल जाने का मार्ग दे दिया, जबकि गोदावरी, साक्षी होते हुए भी रावण के भय से, सीता का अता-पता नहीं बता सकी।

— भगवान राम सरयू में स्नान करते थे–ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है; परन्तु कृष्ण नित्य यमुना स्नान करते थे। वे नैमित्तिक जन्मोत्सव वगैरह के अवसर पर ही घर में स्नान करते थे।

— विशिष्टाद्वैत दर्शन की स्थापना एवं वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार में भाष्यकार स्वामी रामानुजाचार्य एवं रंगदेशिक स्वामी जी की जीवनी पर प्रकाश डाला।

— बिहार से आकर इतनी दूरी पर इतने बड़े पैमाने पर यज्ञ का अनुष्ठान करना बहुत बड़ी बात है।

उद्‌बोधन के बाद बालक स्वामी जी ने यज्ञशाला की परिक्रमा की और स्वामी जी की कुटिया में आए। उन्होंने भगवान को साष्टाङ्ग कर पूजा की। स्वामी जी के आसन पर बैठकर प्रसाद पाए। क्या है आत्मीयता का भाव आधे घण्टे की जगह तीन घण्टे का समय पूज्यपाद ने प्रसन्नतापूर्वक दिया।

बाद में पता चला कि बालक स्वामी जी ने मन बनाया है कि स्वामी जी महाराज के भविष्य में होने वाले यज्ञों में भी पधार कर भक्तों को आशीर्वाद देंगे।

भगवान की स्तुति—नित्य पाँच बजे प्रात:काल सुप्रभातम् स्तोत्र, वेङ्कटेश स्तोत्र, वेङ्कटेश प्रपति: एवं वेङ्कटेश मङ्गलाशासन का पाठ होता था। साढ़े सात बजे सुबह भगवान की स्तुति- आरती होती थी और प्रिय माखन मिसरी का भोग लगता था। शाम में स्वामी जी महाराज की कथा समाप्त होने पर छ: बजे भगवान की रुचि के अनुसार भोग लगता एवं प्रसाद बँटता था। प्रतिदिन भगवान की आरती भागवतपुराण की आरती एवं गुरु की आरती गायी जाती थी। प्राय: प्रतिदिन नई-नई आरती गायी जाती थी। भगवान की आरती के समय भक्त झुम उठते थे एवं नाचने लगते थे—

नृत्यवाद्यादि गीतादि पुराण पठनादिभिः।
राज्योपचारैः सकलैः सन्तुष्टो भव राघवः।।

जिस दिन गुरु की आरती में **'नयना जल से चरण पखार गुरुवर के'** गायी गई उस दिन वास्तव में कई भक्तों के नयनों से जल छलकने लगा। धन्य हो गुरुवर! धन्य हो!! तोहरा समान एक तु ही हो, गुरुवर! तोहरा समान एक तु ही।

व्यवस्था—स्वामी जी महाराज को पूर्वानुमान हो गया था कि भक्तों की भीड़ होगी। सात सौ से हजार किलोमीटर दूर से भक्त आँएगे—उनके लिए रहने सहने एवं भोजन की व्यवस्था ठीक-ठाक होनी चाहिए। इसलिये प्रारम्भ में ही विभिन्न व्यवस्था के प्रभारी भक्तों को आगाह कर दिया गया था।

आवास—आवास की जबरदस्त व्यवस्था की गयी थी। लोग कहते थे कि इतना दूर इतना पैसा खर्च करके कौन आयेगा? लेकिन स्वामी जी की दूरदर्शिता, तीन सौ छोटे बड़े टेन्ट इलाहाबाद से

मँगाए गये थे जिसमें से दो सौ सत्तहत्तर टेन्ट भक्तों की सेवा में लगाए गए थे। समय-कुसमय जब भी भक्त आए उन्हें तुरन्त टेन्ट की सुविधा दी गई। हाँ, नीचे बिछाने के लिए पुआल की कुछ कमी रह गयी थी। मन से या बेमन से लोगों को भगवान के चरण स्पर्श से पवित्र रेत पर लोटने-पोटने का सुअवसर मिला और ओढ़ना-बिछौने में बीस-पच्चीस ग्राम रेत लपटाकर घर पर भी आ गया।

किरीट भाई की एवं झारखण्ड के एक अग्रवाल साहब की जमीन पर आवास की व्यवस्था की गई थी। आवास के चारों ओर बिजली की सुन्दर व्यवस्था थी, पंक्तिबद्ध ट्यूब जलते थे। चाय-पानी की दूकानें, जरुरत के सामान, टेलिफोन बुथ इत्यादि की सुविधा उपलब्ध थी। लगता था कि विश्वकर्मा ने सुन-शान जगह में एक सुन्दर नगरी बसा दी है।

जल—जल व्यवस्था के लिए प्रारम्भ में काफी जुझना पड़ा। नौ चापाकल, एक कुआँ, पहले से मौजूद एक बोरिङ्ग–सबकी सेवा ली गई। चापाकल फेल होने लगे थे। उन्हें सुधारा गया। एक नगर निगम से एवं एक आश्रम से आए दो बड़े-बड़े टैङ्करों की सुविधा ली गई। सुबह स्नान करते समय एवं भोजन के समय झरना भी चला दिया जाता था। सुबह काफी लोग यमुना जल की भी सेवा लेते थे। कुल मिलाकर जल प्रबन्धन ठीक ही रहा।

भोजन—पहले के यज्ञों की तरह सुन्दर बालभोग और दोनों शाम भोजन की व्यवस्था थी। शुरु में रात में रोटी की सेवा रहती थी। भक्तों की संख्या बढ़ जाने पर दोनों शाम चावल ही चलता था। इसके लिए प्रारम्भ में पटना से चार रसोइया आए थे। बाद में अयोध्या से पाँच रसोइया आए। इसके अलावे छोटे-बड़े और कई चौंके थे। कुछ लोग अपनी व्यवस्था के साथ थे। सामान भण्डार से मिल जाता था–लोग लिट्टी चोखा भी आराम से बनाते और लगाते थे। इस बार हरिवंश कथा सुनने वाले भक्तों के लिए दिन में फलाहार एवं रात्रि में नियमानुसार उनके लिए भोजन की व्यवस्था की गई थी। बाद में इन लोगों ने प्रतीकात्मक भुगतान भी किया था।

चिकित्सा—इसके लिए कई भक्त लगे रहते थे। यज्ञ स्थल पर कोई होमियापैथिक दवा की दो बुँद जिह्वा पर टपका देते थे तो कोई एलोपैथी के पूर्जा लिख देते थे–दवा मँगाकर लोग सेवन करते थे। एक लोकप्रिय 'डाक्टर साहब' की लीला देखिये सर पर पाँच गज का फेटा, काँख में आधा किलो गोली-कैप्सुल से भरा बैग और हाथ में सूई-सिरिंज लिए एक ही रट लगाते—एगो सुइये ले ल कका, सब बोखार-खाँसी-बदन दर्द अपन-अपन रास्ता पकड़ लेतन। कने गोली कैप्सुल खाए जयब, पेट कभी गड़गड़ करतो तो कभी हड़हड़ करतो। ल, सुइये दे दिओ। पेट खराब होने पर नमक-चीनी-पानी-नींबू के घोल पीने का आम परामर्श दिया जाता था।

गम्भीर रोगियों को इनकी दवा काफी राहत पहुँचाती थी। रोगी ठीक हो जाते थे। यही डाक्टर साहब तत्पर रहते थे। स्वामी जी महाराज की गाड़ी हमेशा उपलब्ध रहती थी; आदेश मिलते ही चालक स्टीयरिङ्ग पकड़ लेते थे। दुर्घटना में एक महिला का पैर टूट गया था। उसकी सेवा के लिए भी लोग तैयार रहते थे। मालुम हो जाने पर स्वामी जी महाराज या यज्ञ समिति द्वारा चिकित्सा व्यय का वहन किया जाता था।

शौचालय—शौचालय की व्यवस्था की गयी थी। पर इतना लम्बा-चौड़ा क्षेत्र उपलब्ध रहने के कारण लोगों ने इसे प्रयोग में नही लिया।

मञ्च की उलटी दिशा—पूर्व के अनुष्ठानों में प्रवचन मन्च या पण्डाल पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख रहता था। यहाँ वृन्दावन में दोनों ही पश्चिमाभिमुख थे। हो सकता है उपलब्ध जगह की उपयोगिता या दिव्य धाम होने के कारण यहाँ दिशा भेद न माना गया हो।

बिजली—शहर के यज्ञ में यह पहला मौका था जहाँ राज्य बिजली बोर्ड से यज्ञ हेतु विद्युत कनेक्शन नहीं मिला। जेनरेटर से ही काम चलाना पड़ा। प्रारम्भ में गया के एक भक्त के जेनरेटर से काम चला। लोड बढ़ने पर भाड़े का जेनरेटर आया। माइक-साउण्ड बॉक्स भी उसी से भाड़े पर लिया गया। डिजल पर खर्च बहुत आया। बिजली सम्बन्ध न होने से धोबीघाट परिक्रमा मार्ग से मुख्य मार्ग तक करीब आधा किलोमीटर अँधेरा रहता था। भक्तों को अँधेरे के कारण एवं कच्ची, उबड़-खाबड़ सड़क पर काफी कठिनाई हुई। रेतिली मिट्टी के कारण कई बार रिक्शा, टेम्पू, कार आदि को फँसते हुए देखा गया।

भण्डारण—जैसा पहले ही लिखा गया है प्रारम्भिक आवश्यकता की सामग्रियाँ गया में ही खरीदी गई थी। हुलासगंज से १५० मन एवं एक भक्त द्वारा दिया गया ५० मन चावल कुल २०० मन चावल इधर से ही गया था। बाकी सामान आवश्यकतानुसार स्थानीय बाजार वृन्दावन और राया में ही खरीदा गया। मुख्य भण्डारण यज्ञ स्थल पर ही किया गया। कच्चा सामान एवं तैयार लड्डू-पनतुआ भी यहीं रखा गया। दो भण्डारी थे। एक पुराने अनुभवी दूसरे नवनियुक्त। एक गोरे भण्डारी और दूसरे दाढ़ीवाले के नाम से प्रसिद्ध थे। दोनों काम में चुस्त-दुरुस्त थे।

दर्शनीय स्थानों का भ्रमण—वृन्दावन के आसपास बरसाने, प्रेमसरोवर, नन्दग्राम, गोकुल, मथुरा जन्मभूमि, रमण रेती आदि दर्शनीय स्थान हैं। वहाँ जाने के लिए बसों एवं टैम्पू की सुविधा यज्ञस्थल पर ही उपलब्ध थी। लोग अपनी सुविधानुसार भ्रमण करते थे। स्थानीय रंग भगवान एवं बाँके बिहारी के दर्शन पैदल चलकर करते थे। कुछ लोगों ने वृन्दावन का परिक्रमा भी किया।

ज्ञानमञ्च से सन्त विद्वानों का प्रवचन एवं रासलीला—मुख्य पण्डाल के ज्ञानमञ्च पर १० से १४ मार्च तक (१२ तारीख जिस दिन बालक स्वामी जी आए थे कुछ परिवर्तन के साथ) शाम ४ बजे से ९ बजे रात तक सन्त विद्वानों का प्रवचन होता था। मगध विभूति डॉक्टर राजदेव शर्मा ने मञ्च से अनुरोध किया था कि भगवान की लीलाभूमि में कृष्ण तत्त्व एवं लीला पर ही प्रवचन हो। लेकिन अपनी-अपनी इच्छानुसार विषयों का चयन कर लोगों ने प्रवचन किया। स्वामी जी महाराज प्रारम्भ से ही भागवत-कथा और उसके बाद कृष्णतत्त्व-लीला के रस में जो गोता लगाना प्रारम्भ किया, अन्त-अन्त तक गोता लगाते ही रहे। भक्त लोग भी उसी रस में डुबे रहे।

इसी मञ्च से डॉक्टर राजदेव शर्मा द्वारा लिखित पुस्तक 'साधना-विज्ञान' का लोकार्पण स्वामी जी महाराज के कर कमलों द्वारा किया गया।

मञ्च सञ्चालन का कार्य अपने चिर परिचित शैली में हुलासगंज संस्कृत महाविद्यालय के प्रोफेसर डॉ० श्रीनिवास शर्मा ने किया।

९ बजे रात से १२ बजे तक रासलीला होती थी। भगवान श्रीकृष्ण की प्रमुख लीलाओं को दिखलाया गया। अन्तिम दिन वरसाने की लठमार होली का भी प्रदर्शन किया गया।

शरणागति-दीक्षा—पूरे यज्ञ के दौरान भक्तों की शरणागति का कार्यक्रम चलता रहा। हरिवंश कथा में शामिल होने वाले भक्तों के लिए तो दीक्षा लेना जरूरी ही था। काफी संख्या में लोगों ने दीक्षा ली। आखिर भक्तिमय वातावरण और दिव्यधाम

वृन्दावन, लोग चुकते क्यों?

उपनयन—उपनयन संस्कार की भी व्यवस्था की गई थी। इस समारोह में एक दर्जन विद्यार्थियों ने भाग लिया–कुछ विद्यालय के छात्र और कुछ भक्तों के किशोर। पुरोहित का काम लक्खीबाग लक्ष्मीनारायण मन्दिर के पुजारी जी ने किया। भीक्षाटन में लोग कुटिया के बाहर छोटे सरकार के पास आए। सरकार ने कहा आशीर्वाद तो है ही–थाली भी भर दी जायेगी चाहे जैसे हो। एक बटुक थाली लेकर भीतर गया और क्षण भर में फल-फूल एवं द्रव्य से भरी थाली लेकर बाहर आया। यज्ञ समिति की ओर से भी 'भीक्षा' दी गई।

पुस्तक बिक्री केन्द्र—अन्य यज्ञों की तरह यहाँ भी पुस्तक बिक्री केन्द्र बना था। पुस्तकों की सूची में तीन नई पुस्तकें जोड़ी गई थी–स्वामी जी महाराज द्वारा लिखित दो पुस्तकें—श्रीराम कथा-रसायन (तृतीय भाग) एवं गीता-प्रवचन पीयूष (द्वितीय षट्क) और डॉक्टर राजदेव शर्मा द्वारा लिखित एक पुस्तक-साधना विज्ञान। 'अर्चागुणगान' जो दो-तीन वर्षों से अनुपलब्ध था, वह भी छपकर बिक्री हेतु उपलब्ध हो गया था। चालीस हजार रुपये की पुस्तकें बिकीं थी।

प्रचार-प्रसार—इस यज्ञ का प्रचार-प्रसार सुन्दर हुआ। वृन्दावन, गोवर्द्धन, यमुना, मथुरा आदि की महत्ता बताते हुए नोटिस, कीमती पम्पलेट गाँव-गाँव से लेकर शहरों तक पहुँचाये गए। होल्डिंग बने, लकड़ी के फ्रेम में बड़े-बड़े पम्पलेट लटकाए गए। रेलगाड़ियों में भी पोस्टर साटे गए। यज्ञ के दौरान मिडिया वालों ने भी काफी सहयोग किया। स्थानीय समाचार पत्रों में प्रतिदिन प्रवचन का सारांश प्रकाशित होता था।

प्रशस्ति के शब्द—स्वामी जी महाराज ने कहा—'सबसे अच्छा तो बूढ़ा साधू है न जी (इशारा था नरेन्द्र साधू विहटा वाले की ओर); जो दो महीने से अगोरे हुए हैं और सारे निर्माण का काम करा दिया और एक रामाधार जी को देखिये कि दो महीना चन्दा किए और फिर यहाँ डटे हुए हैं–'अपना व्यवसाय-पम्प आदि सब छोड़कर बैठे हुए हैं'।

पहले बिहारी सन्त का यज्ञ—लोगों ने बताया कि स्वामी जी महाराज पहला बिहारी सन्त हैं जिन्होंने यमुना की गोद–'ज्ञान गुदड़ी' में यज्ञ किया। बताते चलें कि वृन्दावन के उत्तरी परिक्रमा मार्ग से लेकर देवराहा बाबा आश्रम तक यमुना नदी की धारा का मार्ग बदलते रहा है। अत: यज्ञस्थल यमुना की गोद ही थी। अयोध्या का यज्ञ स्थल भी कुछ ऐसा ही था। लोगों ने कहा कि पहला बिहारी भागलपुर के शृङ्गी ॠषि ने राजा दशरथ के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया था। लेकिन सरयू की गोद में यज्ञ कराने वाले पहला बिहारी सन्त स्वामी जी ही हैं।

नामकरण संस्कार—वाराणसी के एक विद्वान् पण्डित 'गर्गाचार्य' ने 'गुण कर्म विभागश:' के आधार पर तीन कार्यकर्त्ताओं का नामकरण संस्कार किया, ये हैं–प्रोब्लम स्वामी, नो प्रोब्लम स्वामी एवं बालक स्वामी।

स्थानीय सन्तों की भूमिका—सत्कर्म के लिए सन्त मिल ही जाते हैं। अयोध्या यज्ञ में कृष्णाचारी जी (लक्ष्मण भवन वाले), राम अवधदास जी, मिथिलेशाचार्य जी, उचौली के मास्टर साहब से काफी सहयोग मिला था। यहाँ भी स्वामी श्रीकृष्णाचारी एवं स्वामी श्रीनिवासाचार्य की भूमिका काफी सराहनीय रही। स्वामी जी महाराज का मथुरा स्टेशन पर हार्दिक स्वागत, अपने आश्रम में आवभगत, हनुमान जी के झण्डोत्तोलन, यज्ञ के दौरान फलाहार की व्यवस्था, हर कार्य उत्कृष्ट ढंग से कराने की चेष्टा, अधिक सहयोग, स्थानीय शिक्षकों, छात्रों, महन्तों, साधु सन्तों का आमन्त्रण, स्वागत, विदाई एवं

अन्य व्यवस्था में काफी योगदान रहा। एक सन्त ने तो यहाँ तक मदद की कि चुन-चुनकर सूखी लकड़ी ट्रक पर लादते थे। अन्त में दस ही मिनट के लिए वापसी यात्रा के समय स्वामी जी का अपने आश्रम में स्वागत, विदाई, स्टेशन तक साथ जाना स्मरणीय रहेगा।

यज्ञ में दो ताले—पूरे यज्ञस्थल में दो ही ताले मुख्य रूप से लटकते नजर आए। एक पैसे के बक्से में और दूसरा नेबारी-पुआल के घर में। दूसरा इसलिए लगाया गया कि वृन्दावन क्षेत्र में धान की फसल प्राय: न होने के कारण नेबारी की कमी थी। अत: उसे नियन्त्रण में रखा गया था।

साधु-सन्तों की विदाई—स्वामी जी महाराज ने अपनी तरफ से सुदूर इलाकों एवं आश्रमों से आए साधु सन्तों की विदाई की। सभी सन्त प्रसन्नचित्त दीखे। इस कार्य में लक्ष्मीप्रपन्नजी की अहम भूमिका थी। वे ही सन्तों की सेवा में भी लगे रहते थे।

चौक चौराहे पर चर्चा—सुना कि वृन्दावन के चौक-चौराहे एवं आश्रमों में ११ मार्च को संस्कृत विद्यालय एवं महाविद्यालय के विद्वान शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के स्वागत एवं दान-दक्षिणा के बाद से ही चर्चा होने लगी कि ऐसा यज्ञ कभी नहीं हुआ था–खर्च करोड़ों तक होता है अन्य यज्ञों में, पर यह यज्ञ अपने आप में आदर्श था।

यज्ञ को उत्कृष्ट बनाने में भूमिका—हनुमान जी के झण्डोत्तोलन के बाद से स्वामी जी महाराज हमेशा चिन्तन में लगे रहते थे कि यज्ञ के सारे अनुष्ठानों को उत्कृष्ट कैसे बनाया जाय। उसी के अनुरूप आदेश होते रहता था और भक्त कार्य में लगे रहते थे।

छोटे सरकार ने भी आमन्त्रित शिक्षकों, विद्यार्थियों, महन्तों, साधु-सन्तों के स्वागत, दान-दक्षिणा को भव्य बनाने में अपनी अहम् भूमिका अदा की। इस कार्य में स्थानीय दो सन्त भी जी जान से लगे रहते थे।

स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद—१५ मार्च को अन्तिम प्रवचन था। इसके बाद यज्ञ समापन पर स्वामी जी महाराज ने कहा कि सभी भक्त अपने-अपने कार्य में समर्पण भाव से लगे थे इसलिये यज्ञ भली-भाँति सम्पन्न हो गया। अन्त में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जिस किसी ने भी यज्ञ में सहयोग किया सबके लिए स्वामी जी महाराज ने मङ्गालाशासन किया। छोटे सरकार ने भी आर्शीवचन दिए। यज्ञ समिति भी सभी भक्तों के प्रति आभार प्रकट करती है जिनके सहयोग से यज्ञ सफल हुआ।

इन्द्र का प्रकोप—ऐसे सुन्दर यज्ञ में इन्द्रदेव को घबराहट होना एवं प्रकोप दिखलाना स्वाभाविक है। अयोध्या में मुख्य यज्ञ के पहले 'बालू के उड़ते अवीर' का अनुभव हुआ था। यहाँ मुख्य यज्ञ प्रारम्भ होते ही हवा में गति, बादलों का आना जाना, उनकी गड़गड़ाहट एवं 'दामिनि दमकि रहहि धनकाही' ने थोड़े समय के लिए किस को न भयभीत कर दिया लेकिन यज्ञ तो भगवान के लिए हो रहा था। लगता है इन्द्र को वे सारी बातें याद आ गई कि इसी व्रज भूमि में भगवान ने नन्द बाबा एवं अन्य गोपों से उनकी (इन्द्र की) पूजा बन्द करवा दी थी। स्वयं भगवान ने गिरिराज गोवर्द्धन पर्वत को जमीन से उखाड़कर अपनी कानी अङ्गुली के सहारे व्रजवासियों की रक्षा हेतु डठाकर उनका (इन्द्र का) मान मर्दन किया था। यहाँ दाल गलने को नहीं है। ऐसा समझकर दूसरे दिन से ही इन्द्र ने रास्ता बदल दिया और यज्ञ के सारे कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हुए।

प्रो० रामकरण शर्मा के दो शब्द—नित्य प्रवचन मञ्च से प्रो० रामकरण शर्मा के आशीर्वचन भक्तों को मिले। श्री शर्मा संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान

हैं, इनका जीवन-परिचय दिल्ली से आये डॉ० शास्त्री से मिला कि डॉ० श्रीशर्मा भारत सरकार के कई उच्च पदों पर कार्य कर चुके हैं। विश्व स्तर पर संस्कृत के प्रचार-प्रसार में इनकी अहम भूमिका रही है। अध्ययन अध्यापन के इनकी कार्य-कुशलता पर प्रकाश डाला, छोटे सरकार ने कहा कि अनुशासन कैसे लाया जाए इसका गुर डॉ० शर्मा से प्राप्त किया जा सकता है। डॉ० शर्मा ने यज्ञ की महत्ता पर प्रकाश डाला एवं वृन्दावन के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला, कृष्णलीला, भगवत् भक्ति आदि पर प्रकाश डालकर उन्होंने आशीर्वचन दिया।

****

श्रीधाम वृन्दावन में श्रीलक्ष्मी-नारायण महायज्ञ सम्पन्न

श्रीधाम वृन्दावन में श्रीलक्ष्मी-नारायण महायज्ञ का आयोजन दिनाङ्क १० मार्च से १४ मार्च २००८ तक अनन्तश्री विभूषित स्वामी श्रीरङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज, हुलासगंज, बिहार की पावन उपस्थिति में बड़े ही वैभव के साथ सम्पन्न हुआ। इस आयोजन में बिहार प्रान्त के लगभग दस हजार भक्तों ने भाग लेकर महायज्ञ को अद्भुत बना दिया। यज्ञ का आयोजन यमुना तट पर बने विशाल यज्ञ मण्डप में सम्पन्न हुआ। आये हुए समस्त भक्तों के ठहरने की व्यवस्था भी यहीं रामानुज नगर की स्थापना करके की गई। यह यज्ञ एक कुम्भ तेले की तरह से प्रतीत होने लगा था। श्रीधाम वृन्दावन में श्रीरामानुज सम्प्रदाय के किसी भी महापुरुष द्वारा किया गया यह प्रथम विशाल आयोजन था।

ऐसे तो यह यज्ञ दिनाङ्क २२ फरवरी, २००८ से ही प्रारम्भ हो गया था। जिसमें अखण्ड हरिनाम सङ्कीर्तन, श्रीमद्भागवत कथा पारायण एवं श्रीहरिवंश पुराण कथा आदि के द्वारा भी भक्तों को आनन्द प्रदान किया गया। दिनांक १० मार्च से १४ मार्च २००८ तक लगभग १० हजार से अधिक साधु-सन्तों को भण्डारा कराया गया। जिसमें सभी को वस्त्र और दक्षिणा भी प्रदान की गयी। प्रतिदिन सायंकाल स्थानीय विद्वानों के प्रवचन भी हुआ

(साभार : अनन्त-सन्देश)

शीघ्र विवाह हेतु

देवेन्द्राणि नमस्तुभ्यं देवेन्द्रप्रियभामिनि।
विवाहं भाग्यमारोग्यं शीघ्र लाभं च देहि मे ।।

तुलसी के समीप इस मन्त्र को प्रतिदिन १०८ बार जपना चाहिए।

विधि—जप के बाद किसी वर्तन में एक पाव गाय का दूध लेकर दाहिने हाथ में रखे तथा बायें हाथ में १ पाव पानी रखे, दोनों को लिये हुए तुलसी की प्रदक्षिणा करे। प्रदक्षिणा के समय ऊपर लिखा मन्त्र पढ़ते रहे। परिक्रमा पूरी होने पर दोनों हाथों के दूध एवं पानी से एक बार सूर्य को अर्घ्य देवें। इस तरह १२ बार करना चाहिए। इक्कीस दिनों तक यह विधि करने पर कन्या का शीघ्र विवाह होता है।

करते थे। उक्त समस्त कार्यों को श्रीस्वामी हरेरामाचार्य जी महाराज (छोटे स्वामी जी) बड़े उत्साह के साथ सम्पन्न कराते रहे। यज्ञ कार्य में वृन्दावन के स्वामी श्री श्रीनिवासाचार्य जी का सहयोग भी सराहनीय था।

*****

परमाचार्य जी महाराज की जयन्ती सोल्लास मनायी गयी।

१४ मार्च २००८ श्रीधाम वृन्दावन उ०प्र० में श्रीलक्ष्मी-नारायण महायज्ञ के अन्तिम दिन वैकुण्ठवासी अनन्तश्री विभूषित स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज की १४३वाँ जयन्ती महोत्सव उनके प्रधान कृपापात्र अनन्तश्री विभूषित स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज के नेतृत्व में सोल्लास मनाया गया। इस सुअवसर पर स्वामी जी महाराज ने परमाचार्य जी के चित्र पर षोडशोपचार से पूजा अर्चना की। पूजा अर्चना स्वामीजी महाराज के अतिरिक्त पूज्यपाद श्री स्वामी हरेरामाचार्य जी महाराज (छोटे स्वामीजी), पं० माधव शर्माजी, श्रीस्वामी श्रीनिवासाचार्यजी आदि अनेक सन्त-महन्तों तथा अनेक विद्वानों द्वारा की गयी। इस अवसर पर स्वामी जी महाराज द्वारा विरचित (दिव्य प्रबन्धों) अर्चागुणगान, ध्रुवचरित आदि का सस्वर पाठ हजारों भक्तों को भावविभोर कर दिया।

*****

आश्रम-समाचार

मेहन्दिया में चारों धाम

भगवान वेङ्कटेश की कृपा से मेहन्दिया, जिला-अरवल (बिहार) में चारों धाम मन्दिर का निर्माण-कार्य प्रगति पर है। प्रस्तावित मन्दिर का तृतीय चरण का ढलाई का कार्य प्रारम्भ है, जो अप्रैल के अन्त तक पूर्ण हो जाएगा। प्रस्तावित मन्दिर (चारों धाम) उत्तर भारत का अद्वितीय मन्दिर होगा; क्योंकि मन्दिर निर्माण में चारों धाम के निर्माण-व्यवस्था, कला, आकृति, पूजन व्यवस्था आदि का समुचित समावेश योजना में प्रस्तावित है। कार्य अत्यन्त कठिन है, फिर भी भगवान की कृपा, आचार्यश्री का आशीर्वाद एवं छोटे स्वामी जी (श्रीस्वामी हरेरामाचार्य जी महाराज) की दृढ़ इच्छा शक्ति एवं श्रम से मन्दिर शनैः शनैः अपने मूर्त्त स्वरूप को प्राप्त हो रहा है। जिस प्रकार पूज्यपाद परमाचार्य जी महाराज ने वेङ्कटेश भगवान को सरौती प्रतिष्ठित कर जन सामान्य को भगवान वेङ्कटेश का दर्शन सुलभ कराया था, उसी प्रकार इस मन्दिर से चारों धाम का दर्शन जन-सामान्य को सुलभ हो जाएगा।

*****